राजा बलदेवदास बिड़ला ग्रंथमाला—२

प्रधान संपादक—हजारीप्रसाद द्विवेदी

रामानंद की हिंदी रचनाएँ

संपादक

स्व० डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

राजा बलदेवदास बिड़ला ग्रंथमाला—२

रामानंद की हिंदी रचनाएँ

संपादक
स्व० डा० पीतांबर दत्त बड़थ्वाल

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

चैत्र रामनवमी सं० २०१२ वि०

प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
मुद्रक—महताब राय, नागरी मुद्रण, काशी
प्रथम संस्करण १५०० प्रतियाँ, संवत् २०१२ वि०
मूल्य : [illegible]
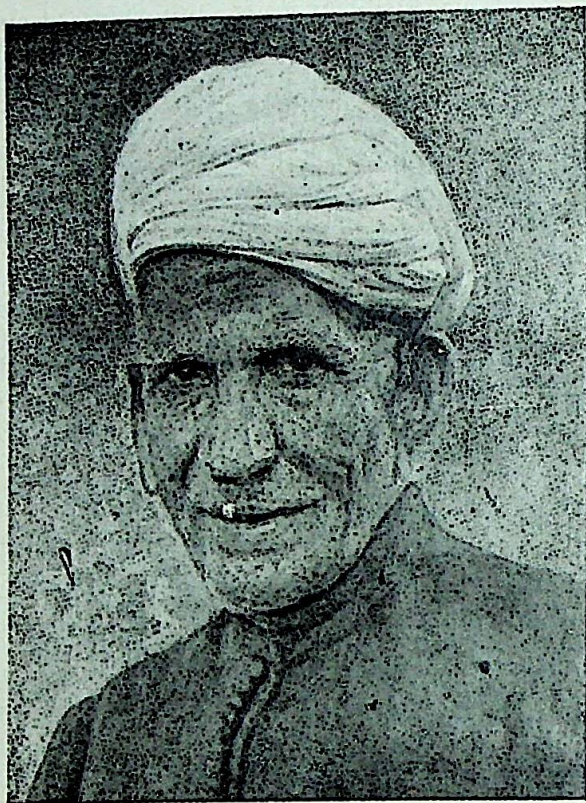
राजा बलदेवदास बिड़ला

राजा बलदेवदास बिड़ला ग्रंथमाला

प्रस्तुत ग्रंथमाला के प्रकाशन का एक संक्षिप्त-सा इतिहास है। उत्तर-प्रदेश के राज्यपाल महामान्य श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी गतवर्ष जब काशी नागरीप्रचारिणी सभा में पधारे थे तो यहाँ के सुरक्षित हस्तलिखित ग्रंथों को देखकर उन्होंने सलाह दी कि एक ऐसी ग्रंथमाला निकाली जाय जिसमें सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ग्रंथ मुद्रित कर दिए जाँय। बहुत अधिक परिश्रमपूर्वक संपादित ग्रंथ छापने के लोभ में पड़कर अनेकानेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों को अमुद्रित रहने देना उनके मत से बहुत बुद्धिमानी का काम नहीं है। उन्होंने सलाह दी कि ये पुस्तकें पहले मुद्रित हो जायँ फिर विद्वानों को इनकी सामग्री के विषय में विचारने का अवसर मिलेगा। सभा के कार्यकर्त्ताओं को राज्यपाल महोदय की यह सलाह पसंद आई। हीरक जयंती के अवसर पर सभा ने जिन कई महत्त्वपूर्ण कार्यों की योजना बनाई उनमें एक ऐसी ग्रंथमाला का प्रकाशन भी था। सभा का प्रतिनिधि मंडल जब इन योजनाओं के लिये धन संग्रह करने के उद्देश्य से दिल्ली गया तो सुप्रसिद्ध दानवीर सेठ घनश्याम दास जी बिड़ला से मिला और उनके सामने इन योजनाओं को रखा। बिड़ला जी ने सहर्ष इस प्रकार की ग्रंथमाला के लिये २५०००) रु० की सहायता देना स्वीकार कर लिया। इस कार्य के महत्त्व को उन्होंने तुरंत अनुभव कर लिया और सभा के प्रतिनिधि मंडल को इस विषय में कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं हुई। बिड़ला परिवार की उदारता से आज भारतवर्ष का बच्चा-बच्चा परिचित है। इस परिवार ने भारतवर्ष के सांस्कृतिक उत्थान के लिये अनेक महत्त्वपूर्ण दान दिए हैं। सभा को इस प्रकार की ग्रंथमाला के लिये दिया दान भी उन्हीं महत्त्वपूर्ण दानों की कोटि में आएगा। सभा ने निर्णय किया कि इन रुपयों से प्रकाशित होनेवाली ग्रंथमाला का नाम श्री घनश्याम दास जी बिड़ला के पूज्य पिता श्री राजा बलदेव दास जी बिड़ला के नाम पर रखा जाय और इसकी आय इसी कार्य के लिये लगती रहे।

प्रधान संपादक का वक्तव्य

'रामानंद की हिंदी रचनाएँ' का संपादान स्वर्गीय डा० पीतांबर दत्त जी बड़थ्वाल ने नाना स्रोतों से संकलित करके किया था। उनकी असामयिक मृत्यु से यह पुस्तक प्रकाशित नहीं हो पाई थी और अधूरी भी रह गई थी। उस अधूरी पुस्तक को सम्हालकर सिलसिलेवार लिखने का कार्य श्री पं० दौलतराम जी जुयाल ने किया और सभा के साहित्य मंत्री डा० श्रीकृष्ण लाल जी ने श्री स्वामी रामानंद की जीवनी लिखकर इसकी कमी पूरी कर दी। इस पुस्तक में जो रचनाएँ आई हैं उनके अतिरिक्त कुछ और रचनाएँ भी प्राप्त हुईं। कुछ तो सभा के पुस्तकालय में मिल गईं और पाँचरचनाएँ श्री पं० उदयशंकर शास्त्री जी के संग्रह में मिलीं। सभा ने और शास्त्री जी ने उदारतापूर्वक इन रचनाओं को ले लेने की अनुमति दे दी। इन्हें परिशिष्ट में छाप दिया गया है। स्वामी रामानंद के गुरु स्वामी राघवानंद जी की एक रचना 'पंचमात्रा' विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित उनकी पुस्तक योगप्रवाह में प्रकाशित हुई थी। उसे भी परिशिष्ट में संग्रह कर दिया गया है। विद्यापीठ के अधिकारियों ने और स्व० डा० बड़थ्वाल जी की पत्नी ने इन्हें छापने की अनुमति दे दी हैं। सभा की खोज रिपोर्टों से आवश्यक अंश तुलना के लिये परिशिष्ट में संकलित कर दिए गए हैं। जिन लोगों ने उदारतापूर्वक इस सारी सामग्री को सुलभ बनाने में सहायता की है उनके प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

श्री दौलतराम जुयाल और श्री भुवनेश्वर गौड़ जी ने पुस्तक को इतनी सामग्रियों से भूषित करने और सजा कर शुद्ध-शुद्ध छापने में सहायता दी है। मैं इन लोगों के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

सूची

भूमिका

युग प्रवर्त्तक रामानंद

युग युग से जमा हुए घने अंधकार की, आकाश को छूती हुई दृढ़ प्राचीरें आत्मा को वंदी बनाये रहती हैं। कड़ी लौह श्रृंखलाएं व्यक्ति को अंधविश्वासों से बाँधे रहती हैं। अन्याय की कारा में व्यक्ति का स्वातंत्र्य यंत्रणा की असह्यता से कराहता रहता है। अवसाद भरा जगत् परित्राण की आशा को सर्वदा के लिए त्याग देता है। जान पड़ता है कि हँसती-खेलती सरलता का दिन कभी लौटेगा नहीं। सहसा एक दिव्य विभूति धरा पर उतर आती है और आन की आन में दुर्भेद्य प्राचीरें खड़खड़ ढह पड़ती हैं, लौह श्रृंखलाएँ झनझन टूट गिरती हैं, व्यक्ति की यंत्रणाएँ फू उड़ जाती हैं और स्वातंत्र्य का सूर्य उसे तपाये सोने की आभा से मढ़ देता है। मध्य युग के धार्मिक इतिहास में रामानंद ऐसी ही विभूति थे।

पहले रामानंद का एक पद (सं० २) प्रकाश में आया जिसमें उन्होंने हनुमान की स्तुति की है। इस पद को स्व० डा० ग्रियर्सन ने डा० श्यामसुंदर दास के पास भेजा, जिन्होंने उसे अपने लेख रामावत संप्रदाय में छपवाया (नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ४, पृ० ३२७) उनका एक पद (सं० ५)* सिखों के आदि ग्रंथ (सं० १६६१) में संगृहीत है, जिसमें उन्होंने आध्यात्मसिद्धि में बाहरी उपायों की व्यर्थता बताई है और अंतस्थ ब्रह्म की उपासना की आवश्यकता पर जोर दिया है। उनके भक्ति विषयक दो पदों (सं० १ और ४) का संग्रह रज्जब ने अपने सरबंगी ग्रंथ में किया है।

रचनाएँ

---

* काशी नागरीप्रचारिणी सभा में सुरक्षित सं० १६६० के एक हस्तलेख लिपिबद्ध सरबंगी में यह पद भी है। देखिए, तीरथ तसकर अंग, पत्र संख्या १३८। यही पद तथा संख्या ३ और ६ के पद उक्त सभा में सुरक्षित एक अन्य हस्तलेख (संख्या १४०६); लि० का० सं० १७७?) में स्वा० रामानंद के नामसे अलग दिये हैं—संपादक

और आत्मानंद विषयक दो पद (सं० ३ और ६) सं० १८२५ के लिखे एक वृहत्संग्रह में मिले हैं। इनमें से एक (सं० ६) पुरोहित हरिनारायण जी के सं० १७४३ के संग्रह में भी है। इस प्रकार उनके कुल छ पद मिले हैं।

जोधपुर दरबार पुस्तकालय से उनकी एक छोटी रचना ज्ञान लीला प्राप्त हुई और नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में ज्ञान तिलक नामक एक छोटा ग्रंथ। एक वैष्णव सज्जन से मुझे उनके योग चिंतामणि और राम रक्षा नामक छोटी छोटी रचनाएँ मिलीं। ज्ञान लीला में भक्ति के अभाव में कर्मों के घोर परिणाम की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है।

ज्ञान तिलक कबीर और रामानंद के बीच संवाद रूप में है। उसके आदि में कबीर के अबतक अप्राप्त दो पद तथा टूटे फूटे रूप में चार साखियाँ जुड़ गयी हैं। असल ग्रंथ उनके पीछे आरंभ होता है। पहले आये हुए पद्यों में कबीर पहुँचे हुए संत के रूप में दिखायी देते हैं। संभवतः ये यह दिखाने के लिए आदि में रक्खे गये हैं कि इतनी पहुँच के संत कबीर भी रामानंद के शिष्य थे अर्थात् उन्हीं की शिक्षा के कारण वे इतनी पहुँच को पहुँचे। इस प्रकार ये पद्य रामानंद की ही महिमा प्रकट करते हैं। इसमें रामानंद को कबीर गुरु, स्वामी जी आदि से संबोधित करते हैं और रामानंद कबीर को सिधा, कबीर जी आदि से। इसकी रचना बहुत कुछ गोरख की रचनाओं के सदृश है। गोरख तथा अन्य योगियों की रचनाओं में मिलनेवाली शब्दावली कहीं कहीं पर ज्यों की त्यों व्यवहृत हुई है और कहीं तो पूरा चरण या पद्य ज्यों का त्यों आ गया है। कबीर की रचनाओं से भी उसका संबंध स्पष्ट है परंतु वैसे ही जैसे मूल स्रोत का नदी से। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि परंपरा के द्वारा जोगियों से जो शिक्षा रामानंद को मिली उसे ही उन्होंने कबीर को दिया। कभी कभी ऐसा भी होता है कि गुरु शिष्य के संवाद रूप में जो ग्रंथ लिखे होते हैं वे गुरुओं के न होकर शिष्यों या अनुयायियों के रचे होते हैं। यदि यह भी कबीर का या रामानंद की शिष्य परंपरा में और किसी का लिखा हुआ हुआतो भी रामानंद के विचारों को जानने में इसका कम महत्व नहीं क्योंकि उससे कम से कम यह तो पता चलता है कि उनकी परंपरा में काफी पुराने समय में उनके विचार क्या समझे जाते थे।

राम रक्षा बड़े महत्व की रचना है और बहुत प्रामाणिक भी जान पड़ती है। नागरीप्रचारिणी, सभा की खोज में भी इसकी कुछ प्रतियाँ मिल चुकी हैं। यह ठीक वैसी ही रचना है, जैसी उस समय में सार्वजनिक मन पर

अधिकार कर अपने सिद्धान्तों के प्रचार करने का इच्छुक व्यक्ति लिख सकता था। तंत्र मंत्र की उस समय बड़ी चलन थी। मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि नाना प्रकार के प्रयोग चलते थे। इसी भाँति उनसे बचने के लिए कीलकवच और शरीर रक्षा के अन्य मंत्र तंत्र यंत्रोंका प्रयोग होता था। राम रक्षा इन्हीं पिछले शरीर रक्षा मंत्रों की शैली पर लिखी गयी रचना है, जिसका स्वयं मंत्र तंत्र से संबंध नहीं किंतु जो लोगों के मन में मंत्र तंत्रोंके स्थान की पूर्ति के लिए रची गयी है। २० से २३ तक के पद्य ठीक इसी ढंग के हैं। शेष भाग में ज्ञान भक्ति और योग का समन्वित निरूपण है।

योग चिंतामणि भी अध्यात्म का ग्रंथ है जिसमें तीनों मार्गों की समष्टि हुई है। 'राम मंत्र' नामक एक और पद्य मिला है जिसमें 'रामानंद' की छाप आयी है और रामानंद तथा कबीर की बंदना भी की गयी हैं। किंतु यह रामानंद की न होकर प्रसिद्ध दादू पंथी संत सुंदरदास की रचना है। परिशिष्ट में 'राममंत्र' को छोड़ कर उपर्युक्त सब रचनाएँ दे दी गयी हैं।

संकुचित अर्थ में ये साहित्यिक रचनाएँ नहीं हैं। वैसे भी ज्ञान-तिलक, योग चिंतामणि और रामरक्षा कुछ विकृत रूप में हमें प्राप्त होते हैं। उनमें विशेषकर पिंगल के नियमों का पालन नहीं हुआ है। भाषा भी व्यवस्थित नहीं है। परंतु इन सबका कारण रामानंद का ही नहीं समझना चाहिए। प्रतिलिपिकारों के प्रमाद और स्मृति दोष से भी ऐसा होना संभव है और रामानद सरीखे दुष्प्राप्य रचनाकार के संबंध में और भी अधिक संभव है।

हिंदी में रामानंद की कम से कम एक और रचना होनी चाहिए। उनके नाम के साथ एक अर्धाली का अटूट संबंध है।—जाति पाँति पूछै नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई॥ उपर्युक्त रचनाओं में से किसी में भी यह नहीं पायी जाती है। कुछ और संतों की रचनाओं में इसकी छाया मिलती है। दादू के शिष्य बखना ने कहा है—हरि को भजै सो हरि का होई। नीच ऊँच अन्तर नहिं कोई॥ (बखना की बानी, पृ० १३६, ११९)। इसी प्रकार मलूकदास की 'भक्त पद्धति' में लिखा है—हरि को भजे सु हरि को होई। हरि को ऊँच नीच नहिं कोई॥ परंतु जनसमुदाय की स्मृति में उपर्युक्त अर्धाली रामानंद के साथ इस घनिष्ठता के साथ संबद्ध है कि यह रामानंद के अतिरिक्त और किसी की हो नहीं सकती। अतएव कम से कम वह रचना जिसमें यह अर्धाली आती है अभी मिलने को शेष है।

इनके अतिरिक्त रामानंद के नाम से संप्रदाय में दो अन्य रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। ये हैं वैष्णव मताब्ज भास्कर और रामार्चन पद्धति। दोनों संस्कृत में हैं।

अध्यात्म

आध्यात्म-साधना के पथ को रामानंद ने अगम पंथ कहा है (ति० २०)। यह मार्ग तन-मन का मार्ग है, जिस पर चल कर साधक निष्केवल परम पद प्राप्त करता है (ति० १८)। इसके दो विभाग किये जा सकते हैं, एक तन से संबंध रखनेवाला और दूसरा मनसे संबंध रखनेवाला। इसी को तन का योग और मनका योग कह सकते हैं। ये दोनों असंबद्ध पद्धतियाँ नहीं हैं प्रत्युत एक ही अध्यात्म योग के दो पक्ष हैं और एक के बिना दूसरा सार्थक नहीं हो सकता। तन का योग हठयोग है। यह योग धरणी और आकाश के बीच का अर्थात् मूलाधारसे ब्रह्मरंध्र तक पहुँचानेवाला मार्ग है। संयम इसकी प्राथमिक आवश्यकता है। काम भावना ही मन को सबसे अधिक चंचल बनाती है और सांसारिक कामनाएँ तथा विषय ऐषणाएँ सब काम ही के चट्टे बट्टे हैं। अतः काम से त्राण पाना सबसे बड़ी समस्या है। पुराने योगियों के शिष्यों के ठीक अनुकरण पर कबीर ने पूछा हे गुरु वन में जाता हूँ तो भूख सताती है और नगरी में रहता हूँ तो माया सताती है। कंदर्प की लहर बड़ी कठिन है। जल (वीर्य) से बनी हुई इस काया को किस प्रकार सींचूं। रामानंद ने थोड़े में उपदेश दिया—हे कबीर वज्र-कोपीन बाँधो (ति० ४२-४३)। मन शुक्र के बस में है और बिंदु या जल पवन के बस में (ति० १६)। पवन ही के संयोग से आत्म पुरुष जीव कहलाता है। स्वयं तो आत्मा अविनश्वर है (ति० ३५,३६) इसलिए भी पवन को बस में करना चाहिए, आसन प्राणायाम आदि का इसीलिए योगमें विधान है। योगचिंतामणि में रामानंद ने सिद्धासन में बैठकर प्राणायाम करने और भ्रूमध्य दृष्टि का अभ्यास करने का आदेश दिया है (चिं० ९–११) प्रमित दशाओं में सांस का प्रवाह नासा रंध्रों से बाहर बारह अंगुल तक आता है, इसलिए उसको द्वादश पवन कहा है। द्वादश पवन को पीकर घरकी ओर उलटे सिर में चढ़ाने की व्यवस्था

की है। (चिं० १०) आँखों का योग में अपना ही अलग महत्त्व है। भ्रूमध्य दृष्टि आँखों का ही अभ्यास है, जिसमें दोनों भवों के बीच के स्थान पर दृष्टि लगानी पड़ती है। रामानंद ने इसी को दोनों आँखों को वाण बनाकर भौंहों को उलट कर धनुष खींचना कहा है। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह भी कहा है कि राम आँखोंमें रमता है, किंतु कोई इसका मर्म नहीं जानता (चिं० १६)। इस प्रकार योग की क्रियाओं से मनसा रूप कुंडलिनी जिसको अन्यत्र महाशक्ति भी कहा है (ति० ३५) सुषुम्ना में प्रवेश कर शून्य में मग्न हो जायगी। परंतु भूले भटके जटाधारी साधु शून्य सरोवर की मछली न बनकर तीर्थोंके पानीकी मछली बनते हैं। जैसा रामानंद ने स्वयं कबीर को उपदेश दिया—योग युक्ति की लेजुर (रज्जु) बनाओ और आसनों की तलैया (कूप)। इस प्रकार हे माली पुष्पों और पुष्पेंद्रों से सजी हुई वाटिका को सींचो (ति० २१)। प्राणायाम आदि से ऊर्ध्वगामी हुए रेतस् को पवन ब्रह्मरंध्र में सोख लेता है। ऐसा हो जाने पर नाद बिंदु की ग्रंथि में मन बंध जाता है और उसकी चंचलता मिट जाती है (ति० ४०), भ्रमरगुहा (शून्य मंडल) में निवास मिल जाता है, पंचेंद्रियाँ वश में हो जाती हैं (ति० ३६)। इळा पिंगला; सुषुम्नामें, चंद्र सूर्य का एक घर में (ति० ११) मेल हो जाने से मन को उपराम हो जाता है जगत् के ऊपर विजय-लाभ हो जाता है और फिर जानने को कुछ भी शेष नहीं रह जाता (ति० ३७)। शून्य मंडल में शब्द प्रकट होता है, गुप्त-बाजा (गैबी बाजा अनाहत नाद चिं० १२) बजने लगता है (ति० २७)। कुणकुणी रुणरुणी झुणझुणी ध्वनि करता हुआ (र० १९) यह शब्द रोम रोम में व्याप्त हो जाता है। (र० ११)। शब्द ही आत्मज्योति को छिपाये रहता है, शब्द ही शब्द के द्वारा उसे खोलकर हमारे सम्मुख प्रकाशमान् कर सकता है (ति० १०)। इस अनुभव को प्राप्त करने पर अमृत पान के द्वारा साधक अमर हो जाता है, क्योंकि योग से चित्त के निर्मल हो जाने पर अपने भीतर ही आत्मा के दर्शन होने लगते हैं (ति० १२)। शून्य मंडल में स्थित होकर मोह की निद्रा से जो जागते हैं, वे संसार में विरले हैं (ति० ४०)। रामरक्षा में उन्होंने चाचरी, भूचरी, खेचरी, अगोचरी और उन्मनी इन पाँच मुद्राओं का उल्लेख भर किया है। उन्मनी के संबंध में कहा है कि उसमें सब इंद्रियाँ शान्त हो जाती हैं और मनको

संकेत—ति०=ज्ञान तिलक। ली०=ज्ञान लीला। चिं०=योग चिंतामणि। र०=रामरक्षा। प०=पद।

उपराम हो जाता है (र० २०)। वह नव्य प्रकाश से भरी अवस्था है (चिं० १६)। उन्मनी दृष्टि ब्रह्म-भाव का दर्शन होता है (र० १९)।

इस प्रकार काया गढ़ के ऊपर विजय प्राप्त होती है। तब काया रूप नगरमें हृदय को घर तथा महाशक्ति का रनिवास बना कर (ति० ३५) निर्मल मन ही निरंजन प्रभु के रूप में विराजमान होकर पवन रूप प्रधान (मन्त्री) के सहकार से पंचेंद्रिय रूप प्रजा पर न्यायनिष्ठ (चिं० ६) शासन करता है (ति० ७-८)। स्वयं वज्र की अभेद्य कोठरी में सुरक्षित वैठा हुआ वह वज्र यही वज्र के दंड और वज्र के खड्ग से काल को मार डालता है (र० ९)। निद्राकाल में काल निवास करता है (ति० १०)। जोगी को मायारूप निद्रा नहीं व्यापती। वह सदैव काल से सचेत रहता है। जिसे लोग जागर कहते हैं, उसमें वह सोता रहता है अर्थात् माया-भोग की ओर आँखें बन्द किये रहता है, उसे भोगता नहीं है; किंतु जिसे सुषुप्ति कहते हैं, उसमें वह जागता रहता है, चौकन्ना रहता है कि माया कहीं से उसके हृदय में प्रवेश न कर जाय। एक प्रकार से वह सदा सोता और सदा जागता रहता है (ति० ३८)। इसलिए जोगी से काल डरता है (ति० १७)। उसके वज्र के सम्मुख नहीं आता।

परंतु तन के योग से पीछे जिस फल सिद्धि का होना कहा गया है, वह बिना मन के योग के संभव नहीं हो सकती। मन के सहयोग के बिना तन के सब कर्म छूछे और निष्फल होते हैं। इसी से

मन का योग

रामानंद ने कहा है कि लुंचित (जिनके बाल नुचे हों, जैन साधु), मुंचित (जिन्होंने घरबार छोड़ दिया हो), नागा (जो वस्त्र नहीं पहनते) मौनी आदि सब बाहरी साधना में लगे हुए साधु व्यर्थ अपना जीवन खोते हैं (ति० ३३)। इसी प्रकार एकादशी और रोजा रखना, तीर्थाटन (ति० ५०), वेद और कुरान पढ़ना (ति० ५२) सब निष्फल होते हैं। क्योंकि पढ़ने गुनने मात्र में कुछ नहीं धरा है; सार बात है हृदय का शुद्ध होना (ति० ३२)। इसलिए प्रयत्न बाहर और भीतर, तन और मन, दोनों से होना चाहिए। योग साधन बड़ा घोर युद्ध है। यह सरलता से नहीं जीता जा सकता। सुषुम्ना की घाटी में होनेवाली इस लड़ाई में उत्साह वर्धन के लिए नाम की नौबत बजती रहनी चाहिए (चिं० १-२)। 'ज्ञान लीला' में रामानंद ने सुमिरन का महत्व कहा है। यही भीतर का, मन का प्रयत्न है। लगातार भगवान का चिंतन होना चाहिए, सुरति (स्मृति) उसी में लगी रहनी चाहिए। इसीलिए रामानंद ने साधक को सुरति नगर की सैर करने का आदेश दिया है। सुरति

ही में आत्मा का महल है, आत्मा का निवास है। वहीं उसे ढूँढ़ना चाहिए। वही भरा पुरा नगर है जिसमें आत्मा रूप संपत्ति मिल सकती है। वहाँ जाने के लिए लंबा उलटा मार्ग है। परंतु सुरति कहीं बाहर नहीं है यहीं विद्यमान रहती है। यही राम का प्रकाश है (चिं० ८, ९)। क्योंकि सुरति मन का परमात्मा की ओर उल्टा प्रवाह मात्र है। शरीर में सुरति है, सुरति में आत्मा और आत्मा में परमात्मा का दर्शन (र० १८)।

स्मरण प्रेम का द्योतक है। जिसके प्रति हमें प्रेम होता है, उसका स्मरण अनायास हो जाता है। जिसके आकर्षक गुण लगातार बहुत समय तक हमारे ध्यान में आते रहते हैं, उसके प्रति भी हमारे हृदय में प्रेम उदय हो जाता है। भगवान् में सुरति लगाने से, उसके अनंत गुणों का स्मरण करने से ही, प्रेम से ही आत्म तत्त्व तक पहुंचाने वाली उल्टी यात्रा संभव हो सकती है। साधक के लिए ब्रह्म और माया की ग्रंथि जगज्जाल का बंधन नहीं रहतो प्रत्युत प्रेम-पाश बन जाती है (चिं० १४)। इसी प्रेमनद का उलटा अर्थात् परमात्मा की ओर का प्रवाह सुरति है। सुरति रूप प्रेमनद, प्रेमसिंधु या प्रेम-सरोवर का कूल निरति है (ति० ६), जिस पर गुप्त तत्त्व की पताका फहराती रहती है (चि० २०)। इसमें डुबकी लगानेवाला शुद्ध आत्मा (हंस) निरति अर्थात् परम प्रेम स्वरूप ब्रह्मानंद में मग्न हो जाता है, जहां उसे निरंतर शुद्ध प्रेम का आहार मिलता है (ति० १८)। इस अमृत सुधानिधि का पान करते हुए वह कभी अघाता नहीं है (प० ४)। ऐसा हो जाने पर बाहर की सब क्रियाएं अनावश्यक हो जाती हैं। मन स्वयमेव स्थिर हो जाता है। ऐसी ही अवस्था का उल्लेख रामानंद ने अपने एक पद में (प० ५) किया है। जब उनका चित्त निश्चल और मन पंगु हो गया तो घर ही अर्थात् अंतर्यामी ब्रह्म ही से उनको अनुराग हो गया, उसके रंग में वे रँग गये तब कहीं जाने को उनका जी नहीं किया। उन्हें अनुभव हुआ कि जहां भी जावें अर्थात् तीर्थों और मंदिरों में वहां केवल जल और पाषाण हैं। परंतु परमात्मा तो सर्वव्यापी है। ऐसा भी समय था जब स्वयं रामानंद चोवाचंदन घसकर शरीर में उसको सांप्रदायिक चिह्नों के रूप में लेपकर स्थान स्थान (मंदिर-मंदिर) में पूजा करने के लिए गये परंतु रामानंद उस गुरु के कृतज्ञ हैं जिसने उनके इस सब भ्रम को जला दिया और अर्चनीय ब्रह्म का अपने भीतर ही दर्शन करा दिया।

स्वयं तो आत्मा अविनश्वर है। वह खींचने से खिंचता नहीं न जलाने से जलता है और न सोखा जा सकता है। उसका न जन्म है न नाश

(ति० ३६)। परंतु माया की ग्रंथि में पड़कर यह आत्म-ब्रह्म आवागमन के चक्कर में पड़ जाता है। आत्मा की चार कलाएं हैं—

ऊरम धूरम ज्योति और उजाला। स्वयं रामानंद ने यह नहीं बताया है कि ये क्या हैं। गोरखनाथ आदि योगियों की रचनाओं में भी इनका उल्लेख हुआ है, पर उनकी रचनाओं में भी इनपर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता है। पुराने अध्यात्म की सहायता से ही इनको समझने का प्रयत्न करके हम किसी परिणाम पर पहुँच सकते हैं। इस प्रकार आत्मा जब सृजन की लहर के अधीन पड़कर स्थूल माया का भोग करता है तब वह ऊरम (ऊर्मि) है। भगवद्प्रेम का ताप इस लहर को धूरम (धूम्र) में परिणत कर सूक्ष्मता की ओर ले जाता है। जब वह तल्लीनता की अवस्था में आनंद ज्योति के दर्शन करता है. तब ज्योति और जब साक्षात् ब्रह्मरूप हो जाता है, तब उजाला। प्राचीन शब्दावली का प्रयोग करें तो इनको विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुर्या कह सकते हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्या जीव की ये चार अवस्थाएं इन्हीं कलाओं के अनुरूप हैं।

इस प्रकार तन और मन के संयुक्त योग से साधक को अखंड संपूर्णता का अनुभव होता है। (चि० ७) इस अनुभव का संकेत रामानंद ने कई प्रकार से दिया है। वह बिना बत्ती बिना तेल की अखंड झिलमिली ज्योति है (चिं० २१)। मोतियों की झालर लगी है और हीरों का प्रकाश हो रहा है (चिं० २३) हीरे से बिंधी श्वेत स्फटिक मणि ने तीनों लोकों का अंधकार मिटा दिया है (र० १६)। ज्ञान गुहा में बड़ा सुख मिलता है, अनहद का सौंदर्य दिखायी देता है, अगम से मिलाप होता है, तत्वरूप तरुवर की शीतल छाया में विश्राम मिलता है (ति० ५८)। उस समय शरीरके समस्त अंग और उनके धर्म अपने न रहकर परमात्मा के हो जाते हैं और सारा अस्तित्व तल्लीन हो जाता है (र० १२-१४)। वहां प्रत्यक्षतः विरोधी धर्म विरोध छोड़ देते हैं। सारा अनुभव एकाकार हो जाता है। समस्त इंद्रियाँ रामाभिमुख होकर प्रत्येक अनुभव का शुद्ध रूप में सुख लेने लगती हैं। इसी लिए झिलमिली ज्योति रुणकार ध्वनि के रूप में प्रकट होती है और रुणकार ध्वनि झलकती रहती है (र० ११)। शून्यस्थ सहजानुभव में नित्य वसंत ऋतु का आह्लाद रहता है। वहाँ पहुँच कर साधक फिर अन्यत्र नहीं जाना चाहता। वहाँ इच्छा का नाम नहीं। इसलिए इच्छा से उत्पन्न ॐ त्रिमूर्ति, चौबीस अवतार, पंच तत्त्व आदि सब विलीन हो जाते हैं। वहाँ माया का मंडप

नहीं दिखायी देता और वह अखंड आनंद में विला जाता है (प० ६)। इस प्रकार खजन की गंगा का प्रवाह उलट जाने पर, अमृतशोषक सूर्य के सुषुम्ना में विला जाने पर फिर साधक को प्रतिबिंब रूप से नहीं, बिम्ब रूप से तुर्या में ब्रह्म के साक्षात् दर्शन होते हैं, अपरोक्षानुभूति होती है (र० १८) और वह अमृतत्व प्राप्त कर स्वयं ब्रह्म हो जाता है। यह अनुभूति भाषा से अनुभूति पथ में नहीं लायी जा सकती। जो उसे स्वतः अनुभव करता है, वही जानता है कि वह क्या है (ति० १२)।

साधक की रहनी में दया का बड़ा महत्त्व है। जिस हृदय में दया नहीं वह उजाड़ है। दया ही हृदय को बसाती है (ति० ८)। ज्ञानी के लिए

रहनी

शीलवान् होना आवश्यक है। कृपाण को जैसे म्यान सुरक्षित रखता है, उस पर जंग नहीं लगने देता, उसकी धार को बिगड़ने नहीं देता, उसी प्रकार शील ज्ञान की चमक को बनाये रखता है। और, कदाचित् किसी कारण जंग लग ही जाय तो संतोष उसको फिर से चमका देनेवाला मसकला है (ति० ९)।

जीव जगत् में मान धन आदि के गर्व से बड़ा फूला रहता है किंतु यह सब है क्या। सेमल का ऊँचा पेड़ देखकर सुआ फलों की आशा से पेड़ पर गया। वहाँ मिला उसे केवल भूआ। ऐसा ही पुत्र कलत्र और विषयों का सुख है (प० १)। चींटियाँ गुड़ की मिठास के लोभ से गुड़ पर चिपटती हैं। सुख तो उन्हें एक रत्ती प्रमाण मिलता है, किंतु जब पंख गुड़ में सन जाते हैं तो फिर उड़ना कठिन हो जाता है, और पछतावा छोड़ कोई चारा उनके पास नहीं रह जाता (प० ३)। सपने में कोई राजा हो जाय तो इससे वह वास्तविक राजा तो हो नहीं जायेगा। वास्तविक राज्य त्याग है, वैराग्य है (चिं० ६)। ममता और अहंकार का भाव त्यागे बिना आत्म समाधि नहीं लगती (प० ३)। धर्मराज से रामानंद ने कहलाया है—हे नर नारियों, अपना भला चाहते हो तो भगवान् की भक्ति करो—हरिस्मरण करने वालों को यम, यातना नहीं होती। उसके अभाव में तुम्हें दुःख भुगतना पड़े तो मुझे दोष न देना। क्योंकि मैं तो पाप पुण्य की छानबीन करके तुम्हारे ही कर्मों को तुम्हें भुगताता हूँ। अतएव जो कुछ तुम्हें भुगतना पड़े उसके संबंध में दोष तुम्हारा है, मेरा नहीं (ली० ९–१०)। अतएव साधक को सतत भगवत्स्मरण और गुरु ज्ञान के चिंतन मनन में समय बिताना चाहिए। पढ़ गुन कर जो अर्थ के विचार में नहीं लगते उनके कर्मों का बोझ बढ़ता रहता है (ति० २८)।

परमात्मा तक पहुँचाने वाले इस अध्यात्म मार्ग में मार्ग से पूर्णतया परिचित पथ प्रदर्शक पहली आवश्यकता है। पहले खोज गुरु की करनी पड़ती है। गुरु के मिल जाने पर उसके बताये मार्ग पर चलने से फिर सद्गुरु मिलता है (ति० ३१)। गुरु ज्ञान देनेवाला है और सद्गुरु जिसका ज्ञान दिया जाता है, वह परमात्मा। एक प्रकार से सद्गुरु का प्रतिनिधि होने के कारण गुरु भी सद्गुरु कहाता है। रामानंद ने कबीर को उपदेश दिया कि गुरु वह बनिया है जिसका यह सारा जगत् पसारा है। वे ज्ञान दीपकको लेकर (हृदय-रूप) कंदरा में (अपनी शिक्षा के रूपमें) बैठे हैं और चतुर्दिक् उजाला हो रहा है (ति० २५)। कबीर की भी समझ में आ गया कि परमात्मा का सच्चा दर्शन तभी हो सकता है जब सद्गुरु मिले, नहीं तो अध्यात्म नहीं पच मरना है। क्योंकि वाचनिक ज्ञान मात्र से कोई लाभ नहीं होता। यदि नौका पर केवट न हो तो कैसे पार उतरा जा सकता है (ति० २६)। जीव के संशय का उच्छेद गुरु ही करता है जिससे परमात्मा का संग प्राप्त होता है (ति० ३४)। जिसको सद्गुरु मिल गया उसको पूरा संन्यास प्राप्त हो जाता है। सांसारिकता उसमें कदापि नहीं रह जाती(चिं० १६)। गुरु के एक वचन से शिष्य के कोटि कर्म कट जाते हैं (प० ५)। कबीर ने पूछा हे गुरु वस्तु अथवा परम तत्त्व तो है बहुत और पात्र है छोटा। यदि दबा दबा कर भरते हैं तो बर्तन के टूट जाने का डर है और यदि ऊपर से यों ही रखते जाते हैं तो वस्तु के नष्ट हो जाने का डर है। रामानंद ने उत्तर दिया—यदि वस्तु को धीरे धीरे धरते जाओ तो धीरे धीरे बरतन में सब अँटता जायगा। हमने भी ज्ञान धीरे धीरे ही (गुरु से) प्राप्त किया और धीरे धीरे ही अपने शिष्यों को दिया (ति० २२-२३)। दूसरे स्थल में कहा है कि जिसके हृदय में जितना स्थान देखो, उसमें उतना ही डालो (ति० ४७)। इसी प्रकार सत्संग भी आवश्यक बतलाया गया है। उससे मन का मैल कटता है (प० १)। मूर्खों का संग छोड़ देना चाहिए जो प्रकट रूप में पशुओं के समान हैं (ति० ३१)।

गुरु

———

रामानंद संप्रदाय

रामानंद संप्रदाय में **वैष्णव मताब्ज भास्कर** और **रामार्चन पद्धति** मान्य ग्रंथ हैं। इनमें ग्रंथकार रूप में रामानंद जी का नाम आता है। अतएव संप्रदाय का वास्तविक स्वरूप जानने के लिए उन्हीं का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। **रामार्चन पद्धति** शुद्ध कर्मकांड का ग्रंथ है। **वैष्णव मताब्ज भास्कर** में रामानंद के पट्टशिष्य सुरसुरानंद ने दस प्रश्न पूछे हैं, तत्त्व क्या है? जप किसका किया जाय? इष्ट ध्यान क्या है? मुक्ति का साधन क्या है? उच्चतम धर्म क्या है? वैष्णव कितने प्रकार के होते हैं? उनके लक्ष्य क्या हैं? उन्हें कालक्षेप कैसे करना चाहिए? वे निवास कहाँ करें? इन प्रश्नों के उत्तर में स्वामी रामानंद ने अपने मत का व्याख्यान किया है, जिससे सूक्ष्म रूप में पंथ का सारा स्वरूप व्यक्त हो गया है। यहाँ यथाक्रम इन प्रश्नों के उत्तर के रूप में नहीं प्रत्युत अपने ढंग से स्वतंत्र रूप से उसका विवेचन किया जाता है।

इस ग्रंथ के अनुसार तत्त्व त्रिविध हैं—ईश्वर, चित् (जीव) और अचित् माया)। परमतत्त्व में तीनों निहित हैं। तीनों अनादि और नित्य हैं। माया

संप्रदाय के अनुमत रामानंद के दार्शनिक सिद्धांत

अज्ञा, अचेतना, समस्त विश्व की उत्पादिका, नाना वर्णात्मिका, त्रैगुण्य का घर, महत् आदि पदार्थों और अहंकारादि गुणों की प्रसविनी होने पर भी मूल रूप में अविकृत है, शुभा है, अव्यक्ता है, व्यापार हीना है और इसलिए परार्थ की साधिका है। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान्, अजर, अमर, कलुष रहित, सनातन और मन वाणी के द्वारा अगम्य है। ईश्वर और माया में यह अंतर है कि ईश्वर ज्ञान स्वरूप है और माया अज्ञा; ईश्वर विभु है और माया अणु। ईश्वर माया के मध्य निवास करता है, कूटस्थ है; उसके विभुत्व के प्रदर्शन के लिए माया का होना आवश्यक है। दोनों विश्व के उत्पादक कहे गये हैं माया विश्वयोनि है, बिना उसके ईश्वर सृष्टि नहीं कर सकता। माया से ईश्वर सृष्टि उत्पन्न करता है और उत्पन्न हो जाने पर उसका नियमन, रक्षण और इच्छानुकूल उद्देश्य पूर्ण हो जाने पर उसका संहरण। माया के स्वयं ब्रह्म तत्त्व में निहित होने से ब्रह्म विश्व का उपादान कारण है, संकल्पमय ईश्वर रूप से निमित्त कारण है और अंतर्यामी रूप से सहकारी कारण है। ईश्वर जीव और माया यह ब्रह्म की त्रिपाद विभूति हैं और समस्त व्यक्त सृष्टि लीला विभूति।

जीव में भी ईश्वर के गुण विद्यमान हैं। वह चित (चेतन), ज्ञान शक्ति वाला, ज्ञानानंद स्वरूप और स्वयं प्रकाश है, एक रस है अर्थात् उसका आदि मध्य अवसान नहीं, नित्य है, और अजन्मा है। वह इतना सूक्ष्म है कि उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। जितने सूक्ष्म की कल्पना की जा सकती है, उससे भी वह सूक्ष्म है। ईश्वर में और उसमें यह भेद है कि ईश्वर प्रभु है, और जीव अधीन। प्रत्येक शरीर में जीव का निवास है और व्यापक होने से विभुरूप से प्रत्येक शरीर में ईश्वर भी व्याप्त है। मैं अपने कर्मों का करनेवाला हूँ इस प्रकार अहंकार करता हुआ बद्ध होने पर जीव शुभाशुभ कर्मों का फल भोगता है। ईश्वर को कर्मों का फल क्लेशादि नहीं होता। व्यापक होने के कारण जीव के कर्मों का भी वह साक्षी है। बद्ध, मुक्त और नित्य मुक्त जीव के भेद हैं। बद्ध वह जो जन्म लेकर शुभाशुभ कर्मों का फल भोग रहा है। शुभाशुभ कर्मों के फल से मुक्त होकर मरने के उपरांत जो फिर गर्भ में नहीं आवेगा वह मुक्त, जो कभी गर्भ में आया ही नहीं, वह मुक्त। नित्यमुक्त भी दो प्रकार के होते हैं। एक तो किरीट, मुकुट आदि और दूसरे शेप (लक्ष्मण) आदि परिजन। ऐसा जान पड़ता है कि नित्यमुक्त किरीट, मुकुट, कौस्तुभ मणि आदि के रूप में भगवान् का सायुज्य भोगता है। जिस बद्ध जीव को सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है, वह भी इन्हीं में लीन होकर उसे प्राप्त करता है। विश्व की समस्त विभूतियां राम की भोगी हुई हैं, इस मनोवृत्ति के साथ जा उन विभूतियों को भोगता है और राम के ध्यान में मग्न रहता है (भा० १४२), जो राम के गुणों का अनुसंधान करता हुआ उनकी कायिक वाचिक मानसिक सेवा में तत्पर रहता है (भा० १४३), जो आत्मा को छोड़ अन्य पदार्थों को दुःखमय समझता है अथवा जो आत्मानुभूति में तल्लीन रहता है (भा० १४४) वह बद्ध जीव भी मुक्त हो जाता है।

यह जगत् विशेषकर रजः प्रवर्तित है। जिसमें सत्व और तमस् का

अर्थ प्रकाशिका में कूटस्थ का अर्थ किया गया है योद्धा के समान सबको मार कर आप रहनेवाला, अन्वय प्रकाशिका में पर्वत के समान (निश्चल)। मैंने कूट का माया अर्थ स्वीकार किया है।

संकेत—भा०=वैष्णव मताब्ज भास्कर। रा०=रामार्चन पद्धति।

मिश्रण है। जगत् से पार होने के लिए रज रहित सत्त्वगुण मय होना आवश्यक है। इसीलिए विरजा नदी में इह लोक की सीमा मानी जाती है। विरजा के परे वैकुंठ है। विरजा को सामांत सिंधु भी कहते हैं। सफल साधक जीव राम की दया से सुषुम्नानाम्नी मध्यनाड़ी के द्वारा शरीर से बाहर निकल कर क्रमशः अर्चिर्लोक, दिन, पक्ष, मास, षण्मास और संवत्सर लोकों से होते हुए सूर्य और चंद्र उन लोकों* को पार कर उन लोकों के देवताओं से पूजित होते हुए विरजा नदी में स्नान कर परम पद वैकुंठ में पहुँच जाता है। वहाँ से फिर लौटता नहीं।

मोक्ष

जीव बद्ध क्यों हुआ? इसका कोई कारण 'भास्कर' में नहीं दिया है। यह प्रश्न उठा ही नहीं है। कूटस्थ भगवान के लीला विलास के लिए यह आवश्यक है, संभवतः यह विना कहे मानी हुई बात है, यह उनके सिद्धांत में अनुस्यूत है। जो कुछ भी हो, प्रत्यक्ष तथ्य यह है कि जीव बद्ध दशा में है। अतएव समस्या यह है कि वह बद्ध दशा से कैसे छूटे। इसका प्रधान साधन है पराभक्ति। उसका दूसरा नाम परा अनुरक्ति है। साक्षीरूप से जो विभु माया बद्ध जीव के कर्मों और फलभोग को देख रहा है उस प्रभु राम में परा अर्थात् निष्काम अनुरक्ति ही भक्ति है। तेल की धारा के समान अटूट रूप से नित्य निरंतर राम की संस्मृति का विस्तार है। अर्थात् नित्यशः इस प्रकार राम का स्मरण करने से भक्ति उत्पन्न होती है। पर रूप में जीव ब्रह्म में निहित है, वह उसी का एक अंश है। यह स्मृति ही उसको इस प्रकार ब्रह्म राम में अपने स्थान को प्राप्त करने योग्य बनायेगी। प्रभु राम की शरण में उसे चिर विश्राम देगी। यही तैल धारावदनविच्छिन्न संस्मृति या स्मृति भक्ति मत मतांतरों में नाना प्रकार से प्रकट हुई है। स्मृति भगवान से हमारा संबंध स्थापित करती है। वह कई प्रकार की हो सकती है। सामान्यतया उसके नौ भेद हैं जिनकी प्रेरणा से भक्त उनका यशकीर्तन करता है, उनके चरणों की वंदना करता है, विधि-विधान से उनकी पूजा करता है, उनकी दासता करता है, उनमें सखा-भाव रखता है और अपने आपको सर्वथा उनके अर्पण कर देता है। यही नौ संबंध वैष्णव मताब्ज भास्कर में

स्मृति भक्ति

---

* मिलाइए गीता, ८, २४, छांदोग्य, ५, १०, १,

भी माने गये हैं। इन नौ में भक्ति का सर्व सामान्य रूप निहित है। भक्ति के ऊपर अवलंबित सब मतों के लिए वे आधार रूप हैं। केवल इन्हीं में निष्ठा रखने वाला इसी लिए भास्कर में शुद्ध भक्त कहा गया है। इन भेदों को एक दूसरे का विरोधी न समझना चाहिए। प्रभु के प्रति मन का राग ही इन नाना रूपों में प्रकट होता है। एक ही व्यक्ति में अलग अलग रूप में अथवा एक ही समय में भी वे एक साथ विद्यमान रह सकते हैं। पहले सात में सम्यक् स्थिति हो जाने से आठवां सख्य भाव उदय होगा। सख्य भाव को मन के निकटतम लगाव का प्रतीक समझना चाहिए और मन के जितने निकटतम लगाव हो सकते हैं उन सबका उससे संकेत ग्रहण करना चाहिए जैसे पितृ-भाव, भर्ता भाव, वात्सल्यभाव, स्वाभिभाव, आत्मा-आत्मीयत्वभाव, सेव्य-सेवक भाव और भोग्य-भोक्तृत्व भाव आदि। इस निकटतम लगाव के प्रतिष्ठित हो जाने पर जीव को आत्मसमर्पण का अधिकार प्राप्त होता है। जीव स्वभाव से ईश्वर के अधीन है। इस स्वाभाविक अधीनता को अनुभूति पथ में लाना आत्मसमर्पण है जो उपर्युक्त सख्यादि भावों में प्रतिष्ठित होने से प्राप्त होता है।

प्रपत्ति का रामानंद संप्रदाय में बड़ा महत्व है। रामानंद संप्रदाय प्रपत्ति मार्ग है। अपने आपको सर्वथा भगवान् की शरण में छोड़ देना प्रपत्ति है।

प्रपत्ति

प्रपत्ति की विशेषता न्यास है और प्रवृत्ति की निवृत्ति न्यास कही गयी है। अर्थ-प्रकाशिकाकार ने प्रवृत्ति का अर्थ स्वभरण पोषणादिक व्यापार किया है। किंतु अन्यत्र स्मृति भक्ति के उत्पादक साधनों में क्रिया साधन (पंच महायज्ञ) का उल्लेख किया है, जो सूना दोषों अर्थात् स्वभरण पोषण के लिए किये गये हल चलाना आदि कृत्यों से हुई हत्याओं के निवारणार्थ किया जाता है। इससे इस बात का समर्थन होता है कि स्वभरण पोषणादि के लिए व्यापार का त्याग इष्ट नहीं है। अतएव त्याग से अभिप्राय धर्म त्याग लेना चाहिए, जिसमें कर्म के समस्त स्वरूप अर्थात् कर्तृत्व के अहंकार और फल दोनों का त्याग-निहित है। मलूकदास का 'अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम, दास मलूका कहि गये सबके दाता राम, इसी प्रकार का है, आलसी होने की प्रेरणा नहीं। अपने समस्त शुभ कर्मों को भगवान् को निवेदित कर देना चाहिए। भोजन भी पहले भगवान् को निवेदित करके तब खाना चाहिए। न्यास के छः अंग हैं--भगवान् के प्रति अनुकूलता का संकल्प, प्रतिकूलता का वर्जन, भगवान् सर्वत्र रक्षा करेंगे इस बात में अटल विश्वास, केवल भगवान्

का वरण, आत्मनिक्षेप और कार्पण्य इनको प्रपत्ति के ही अंग समझना चाहिए। इनमें कुछ कमी भी रह जाय तब भी प्रपत्ति में न्यूनता नहीं आती।

प्रपत्ति को सब ग्रहण कर सकते हैं उसमें किसी प्रकार भी बाधा नहीं। समर्थ असमर्थ सब उसके अधिकारी हैं। उसके लिए न बल चाहिए न कुल, न समय, न शुद्धता। उसका अनुसरण करना स्वयं शुद्धता प्रदान करता है। प्रपन्न भक्तों में जाति-पाँति हैं, पर खाई के रूप में नहीं। नीचे वर्ण के प्रपन्न भक्तों की सेवा भी ऊँचे वर्ण के भक्तों से करणीय है। यदि कभी कोई दोष बन पड़े तो भगवान् के प्रपन्न हो जाने से उसका परिहार होता है क्योंकि प्रपन्न भक्त के कर्मों के भोग को व्यापक भगवान् जो उन कर्मों का साक्षी है, स्वयं भोगता है और भक्त का उनसे त्राण कर देता है। यही भगवान् की वत्सलता है। भक्त के दुःख को वे सह नहीं सकते। यदि स्वयं भगवान् का ही अपराध भक्त से हो जाय, प्रपत्ति छूट जाय तो की हुई प्रपत्ति का स्मरण करने से अर्थात् फिर से प्रपन्न हो जाने से इसका प्रायश्चित्त हो जाता है। प्रपन्न को केवल प्रारब्धकर्म भुगतने पड़ते हैं, उसके और सब कर्म क्षीण हो जाते हैं। अतएव वे इस विश्वास से तृप्त रहते हैं कि शरीरांत होने पर अवश्य मोक्ष मिलेगा। कोई-कोई इतने आर्त होते हैं कि एक क्षण भी संसार बंधन को नहीं सह सकते और वे तदनुकूल जीवनमुक्त हो जाते हैं।

प्रपत्ति और स्मृति भक्ति एक ही हैं अथवा अलग-अलग इसका स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं है। परन्तु सब पूर्वापर सम्बन्धों को देखने से यही निश्चित होता है कि स्मृति भक्ति के लिए प्रपत्ति आवश्यक है। स्मृति भक्ति के उल्लेख के पहले तारक मंत्र, द्वयमंत्र तथा चरम श्लोक की विस्तृत विवृति की गयी है। और चरम श्लोक--

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥

प्रपत्ति का आधार है। स्मृति भक्ति के नव विध भावों में आत्मार्पण एक है। वही प्रपत्ति की भी भित्ति है। प्रपत्ति के अंगों में आत्मनिक्षेप के रूप में आत्मार्पण ही बैठा है।

स्वतंत्र रूप से भक्ति कर्म और ज्ञान मार्गों का प्रपत्ति से विरोध है। स्वतन्त्र रूप से उनको करने से प्रपत्ति में बाधा पड़ती है। परन्तु उनको

स्वतन्त्र न मानते हुए केवल भगवान् की आज्ञा समझकर उन्हें करना वांछनीय है। इसी लिए योग के यमादि आठ अंग 'स्मृति' के सुबोधक अंग कहे गये हैं। श्रुति स्मृति प्रतिपादित नियमों का पालन भी लोक संग्रह के उद्देश्य से विहित है। परन्तु उनके फल में कोई कामना न होनी चाहिए। यह भी ध्यान देने योग्य है कि अन्य स्वतन्त्र उपायों से लभ्यमोक्ष में और प्रपत्ति के फल में छोटाई-बड़ाई का भाव या तारतम्य नहीं है। दोनों एक हैं।

साधन-मार्ग

व्यापक रूप से वह विभु हमारे भीतर है किंतु कई बाधाओं के कारण हमें उसकी स्मृति नहीं होती। इस शरीर में व्याप्त परम तत्त्व की अनुभूति के लिए यह आवश्यक है कि शरीर शुद्ध हो जाय, आवरण-रूप न रहे। शरीर अन्न से बनता है। शुद्ध शरीर होने के लिए आहार भी शुद्ध होना चाहिए। दुष्ट आहार से शरीर तामसी हो जाता है और जीव के प्रकाशस्वरूप ज्ञान को ढक देता है। लहसुन, प्याज आदि जो स्वभाव से ही तीक्ष्ण और उत्तेजक आहार हैं (जाति दुष्ट) वे शरीर में मल बढ़ाते हैं। किसी की आत्मा को दुखाकर अन्याय और अत्याचार के परिणाम स्वरूप जो अन्न या द्रव्य (आश्रय दुष्ट) कमाया जाता है उसमें दुखी आत्मा का अभिशाप निहित रहता है, इसलिए त्याज्य है। जूठा, बासी, जिसमें बाल पड़ा हो या अन्य कारण से जो अन्न शुद्धता से स्खलित (निमित्त दुष्ट) हो गया है वह भी अखाद्य है। इन तीनों प्रकार के आहार को त्याग कर शुद्ध आहार करना चाहिए। ऐसा करना 'विवेक' कहलाता है। जैसा छान्दोग्य में कहा है आहार शुद्धि से, सत्त्व शुद्धि होती है और उससे ध्रुव, अचल स्मृति होती है। —७, २६, २

विषयों को सामने पाकर उनकी ओर आकृष्ट होना मन का स्वभाव है (अभिष्वंग) मन का यह विकार इन्द्रियों को उन्हें भोगने के लिए प्रेरित करता है। यही मन को चंचल करता है और जीव को बुभुक्षु बनाकर अविचल स्मृति में विक्षेप डालता है। इस विकार का न होना 'विमोक' कहलाता है जो स्मृति के लिए आवश्यक है।

शुभाशुभ कर्मों का फल भोग ही बंधन है। इन्हीं के कारण जीव का कभी दुःख होता है कभी सुख। देशकाल की प्रतिकूलता से और शोकप्रद घटनाओं की स्मृति से चित्त कातर हो जाता है, खिलता नहीं है। यह अवस्था 'अवसाद'

कहलाती है, और भगवत्स्मृति में व्यवधान डालती है। इस लिए अवसाद का विधान है।

इसके विपरीत जब मन के अनुकूल सुन्दर देश, काल, धन-धान्य स्त्री-पुत्र आदि प्राप्त होते हैं तब जीव अत्यन्त हर्षमय होकर उन्हीं के चिन्तन में मग्न हो जाता है और अन्य सब स्मृतियों के लिए उसके भीतर मानो अर्गला लग जाती है। वे भीतर आ नहीं पातीं यह उद्धर्ष अवस्था है। इसके विपरीत अनुद्धर्ष भगवान् की स्मृति में सहायक होता है।

संसार में जीवन यापन के लिए व्यक्ति को कई प्रकार के व्यापार करने पड़ते हैं, जैसे हल जोतना, धान कूटना, खाना पकाना आदि जिनसे, बिना उसके चाहे, जीव हत्या हो जाती है। उनको रोक सकना उसके वश में नहीं। इन दोषों को सूना दोष कहते हैं। इनके प्रायश्चित्त स्वरूप व्यक्ति को स्वाध्याय अर्थात् वेद - पाठ, होम, अतिथि - सत्कार, पितृ - तर्पण और बलि (सात्त्विक) इन पंच-महायज्ञों को करना विधेय है। इन 'क्रियाओं' तथा अन्य शुभ कार्यों को करने से सूना दोष का परिहार होता है और स्मृति के अनुकूल वृत्ति होती है।

इससे और आगे बढ़कर अच्छे-अच्छे गुणों के संपादन के लिए व्यक्ति को प्रयत्नशील होना चाहिए। सब प्राणियों की भलाई चाहना और करना (सत्य) सरल स्वभाव, मन-वचन और कर्म से एक रूप होना (आर्जव), निस्स्वार्थ भाव से दूसरों का दुःख दूर करने की इच्छा होना और तदनुकूल कामों में प्रवृत्त होना (दया), मन, वचन, कर्म से किसी को दुःख न पहुँचाना (अहिंसा), तथा दूसरे के किये उपकार के लिए कृतज्ञ होना (अनभिध्या) कल्याणप्रद गुण हैं और 'कल्याण' कहे जाते हैं।

अहिंसा का इन सब में ऊँचा स्थान है। वह सब धर्मों का अपत्य है। जप, तपादि उसके बिना निःसत्त्व हैं। जो जीवघात करते हैं, वे एक प्रकार से सर्वव्यापी प्रभु का ही घात करते हैं। इस लिए मांस का सर्वथा निषेध है।

इन सब के साथ-साथ प्रयत्नपूर्वक फिर-फिर समस्त सृष्टि के आश्रय-स्वरूप श्रीराम के चिंतन का अभ्यास करना ये सप्त साधन हैं जो स्मृति को अविच्छिन्न बनाये रखने में सहायक होते हैं।

क

इसी प्रकार योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि ये आठ अंग अनवच्छिन्न स्मृति के सुबोधक अंग कहे गये हैं। ये भी बाह्याभ्यंतर पवित्रता लाते हैं। और प्रत्येक मत में किसी न किसी प्रकार इनका न्यूनाधिक प्रयोग होता है चाहे जिस प्रकार से हो सके अपने दोषों का अनुसंधान कर उनका निवारण करना ध्येय है।

स्मृति के ये सब साधन ऐसे हैं जो किसी मत विशेष की संपत्ति न होकर सर्व-सामान्य की सम्पत्ति हैं; इनमें सांप्रदायिकता नहीं। रामानंद संप्रदाय के सांप्रदायिक लक्षणों में पंच-संस्कार सबसे पहले आते हैं। पहला संस्कार है बाहुमूल में तप्त शंख चक्रादि की छाप। वर्ष भर गुरु प्रवेशोत्सुक साधक को जाँचता है। जब उसे यह निश्चय हो जाता है कि साधक संप्रदाय में प्रवेश पाने के योग्य है तब वह शुभ विधि-विधान से चक्रांकित किया जाता है। तदनंतर वह ऊर्ध्व पुंड्र धारण करता है, वैष्णवांचित कोई दासांत नाम उसे दिया जाता है और मंत्र में दीक्षित किया जाता है तथा उसे तुलसी की माला पहनाई जाती है जिसमें तुलसी काष्ठ के १०८ मनके होते हैं और नाभि तक लंबी होती है। तब पराभक्ति की ओर प्रवृत्त होने का सांप्रदायिक अधिकार प्राप्त होता है।

संप्रदाय

जप के लिए 'रां रामाय नमः' इस षडक्षर मंत्र का विधान है। इसमें वेद मंत्रों में जो स्थान ॐ को दिया जाता है, वह रां को दिया गया है। इतना ही नहीं वास्तव में वह ॐ के ऊपर बिठलाया गया है। ॐ प्रणव है, रां प्रणवि, रां में ॐ निहित है। वह जगत् का आधार साक्षात् ब्रह्मविंद है। रामानंद संप्रदाय के कर्मकांड में राम, सीता और लक्ष्मण तथा हनुमान गरुड़ आदिकों के नाम मंत्रों को छोड़कर और सब मंत्रों में ॐ आता है। और जैसे राम के साथ बीजाक्षर 'रां' का वैसे ही लक्ष्मण के साथ 'लं' का और सीता के साथ श्री अर्थात् 'म्' युक्त आदि अक्षर का व्यवहार होता है—लं लक्ष्मणाय नमः, श्री सीताय नमः। परंतु भव-सागर से तारने वाला मंत्र 'रां रामाय नमः' ही है। इसके एक एक अक्षर की बड़ी विवृति की गयी है। इसके अनंतर चरम श्लोक से युक्त 'द्वय मंत्र' 'श्री रामचंद्र चरणौ शरणं प्रपद्ये' की महिमा गायी गयी है।

राम का वास्तविक पूजन उनके विग्रह, अर्चा या मूर्ति के द्वारा होता है। मूर्ति के रूप में भगवान् अर्चावतार हैं। मिट्टी, पाषाण; धातु आदि की बनी

होने पर भी मूर्ति ये नहीं हैं। क्योंकि अर्चावतार की देह अप्राकृतिक है। राम सब दिव्य गुणों के आकर हैं और सब हेय गुणों का उनमें अभाव है। दया, वत्सलता आदि इन गुणों का राम के साथ नित्य संबंध है और राम के विग्रह का राम के साथ। इस प्रकार इन सब दिव्य गुणों का अस्तित्व और हेय गुणों का अभाव राम के विग्रह में भी है। अर्चावतार सहिष्णु है। अर्चक के सब अपराधों को सहन करता है। अमुक स्थान ही में अथवा अमुक काल ही में उसकी पूजा हो सकती है, इसका उसके संबंध में कोई नियम नहीं। उसके सभी आत्मकृत्य पूजा, भोग, रागादि अर्चक के अधीन हैं। किसी विशेष रूप में ही उसकी पूजा हो सकती हो, ऐसा कोई नियम नहीं है। द्विभुज, चतुर्भुज, किशोर, बालक आदि जिस रूप में चाहे भक्त अपने भगवान की पूजा कर सकता है। प्रचलित ध्यान सांग सायुध सपरिवार राम का होता है। बहुधा राम के साथ सीता और लक्ष्मण भी होते हैं। क्योंकि तीनों मिलकर पर ब्रह्म राम का पूर्णरूप हैं। राम ईश्वर हैं, सीता माया और लक्ष्मण शेष, जीव। राम का ध्यान अधिकतर शस्त्रास्त्रधारी राम के रूप में किया जाता है राम के शस्त्रास्त्रों का बड़ा महत्त्व माना जाता है। स्वामी रामानंद जी ने राम के ही समान राम के आयुधों की भी एक बड़े लंबे श्लोक में प्रार्थना की है। सीता संप्रदाय की प्रवर्तक मानी गयी हैं, इसीलिए संप्रदाय का नाम श्री संप्रदाय है। वे पुरुषकार परा हैं अर्थात् गुरु की शरण में आये हुए भक्तों को भगवान् को निवेदित करती हैं।

पूजा के सोलह उपचार होते हैं। ये षोड़श उपचार हैं—आवाहन, आसन, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल; प्रदक्षिणा और विसर्जन। प्रपन्नता की याचना करते हुए राम के चरणों में साष्टांग प्रणाम करना विधेय है, जिसमें दोनों पांव, दोनों घुटने छाती सिर और दोनों भुजाएँ पृथ्वी को छूती रहें। यह केवल शारीरिक अभ्यास नहीं, इसमें दृष्टि, मन और वचन का भक्ति-विषयक सहकार आवश्यक है।

नित्यनैमित्तिक कार्यों से निवृत्त होकर प्रातः, सायं और मध्याह्न तीनों कालों में इस प्रकार रामार्चन होना चाहिए। साथ-साथ हनुमान, गरुड़ादिकों की भी पूजा होती है। यह पूजा का संक्षेप में वर्णन है। किंतु कर्मकांड की वास्तविक विधि लंबी-चौड़ी है। उसके लिए रामार्चन-पद्धति देखनी चाहिए, जिसमें भोर में बिस्तरे से उठकर रात में बिस्तरे पर जाने तक भक्ति

कृत्यों का पूरा विवरण है। यहाँ इतना ही कहना बस होगा कि वह जागरित अवस्था में सतत राम-स्मरण का अभिनीत रूप है। अर्चना के और जीवन वृत्ति के अनंतर बीच-बीच में जो कुछ अवकाश मिलता जाय उसमें रामायण, महाभारत, श्रीभाष्य (वेदांत सूत्र पर रामानुज भाष्य) श्रीमद्भागवत आदि ग्रंथ तथा द्रविड़ आलवारों की रचनाएँ पढ़ने की व्यवस्था है। यदि स्वयं न पढ़ सकें तो दूसरों से पढ़ाकर सुनें और सत्संग में समय बितावें।

वर्ष भर की २४ एकादशियों को चैत्र की शुक्ल नवमी को रामजन्म के कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को, हनुमज्जयंती के वैशाष शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को नरसिंहावतार के भादौं की कृष्णाष्टमी को, कृष्ण-जन्म के, भादौं शुक्ल द्वादशी को, वामन-जयंती के और वैशाख शुक्ल नवमी को सीता-जन्म के उपलक्ष में व्रतोत्सव का विधान है। इसी प्रकार रथ-यात्रा आदि जन समाज में प्रचलित शास्त्र विहित जा अन्य व्रतोत्सव हैं, उनको मनाना भी विधेय है। तिथियाँ शुद्ध ही लेनी चाहिए, विद्धा नहीं।*

विशेष स्थानों का भी संप्रदाय में मान है जहाँ निवास करना धार्मिक दृष्टि से श्रेयस्कर है। जिस नाम से जहाँ भगवान् निवास करते हैं उस नाम के सहित छयालीस तीर्थों का नाम भास्कर में दिया है।†

---

* व्रत की तिथि या नक्षत्र जिस दिन हो उसके पहले चार दंड शेष रात्रि से या उससे पहले से, यदि तिथि आरंभ हो जाय तो शुद्धा नहीं तो विद्धा। तिथि विद्धा हो तो उसे छोड़ आगे की तिथि में व्रत किया जाता है।

† वैकुंठ (वासुदेव), आमोद (संकर्षण), सत्यलोक (विष्णु), श्वेतद्वीप (तारक), बदरिकाश्रम (नारायण), नैमिषारण्य (हरि), हरिक्षेत्र (शालग्राम), अयोध्या (रामचंद्र), मथुरा (बाल कृष्ण), माया (मधुसूदन) काशी (भोगि शय), अवंतिका (अवंतीपति), द्वारका (यादवेंद्र), व्रज (गोपीजन प्रिय), वृंदावन (नंदलाल), गोमत पर्वत (शारि), हरिद्वार (जगत्पति), प्रयाग (माधव), गया (गदाधर), गंगासागर (विष्णु) चित्रकूट (राघव), नंदिग्राम (राक्षसह्न), प्रभासक्षेत्र (विश्वरूप), कूर्माचल (कूर्म), नीलाद्रि (पुरुषोत्तम), सिंहाचल (महासिंह), तुलसीवन (गदी), कृतशौचक (पापाघह), पांडुरंग (विट्ठल), वेंकटाद्रि (श्री निवास), याद-

संस्कृत और हिंदी रचनाओं की विचार परम्परा का समन्वय

पिछले दो अध्यायों में क्रमशः उनके नाम से मिलनेवाली हिन्दी रचनाओं और संस्कृत रचनाओं से उनकी जो विचार परम्परा निश्चित होती है, उसके दर्शन कराए गए हैं। वैष्णवमताब्जभास्कर में जो दार्शनिक दृष्टिकोण दिखाई देता है, उससे रामानुज के सिद्धांतों से मेल दिखाई देता है। ब्रह्म का त्रिकस्वरूप आदि सारी पद्धति सर्वथा रामानुज के सिद्धांत के मेल में है। राममंत्र और वास्तविक पूजा पद्धति को छोड़कर प्रायः सभी सांप्रदायिक बातें पंच संस्कार आदि रामानुज संप्रदाय के मेल में हैं। रामानुज श्रीवैष्णव संप्रदाय के प्रवर्धक आचार्य थे। श्रीवैष्णव संप्रदाय के दो बड़े भेद हो गये। एक बड़गल कहलाया और दूसरा तिंगल। इनके दृष्टिकोण में थोड़ा अंतर है। १–तिंल्गों के अनुसार भगवान की कृपा अकारण, बड़गलों के अनुसार सकारण। २–तिंगलों के अनुसार कर्म, ज्ञान और भक्ति मुक्ति के स्वतंत्र साधन भी हैं, बड़गलों के अनुसार भक्ति ही मुक्ति का एकमात्र साधन है और कर्म तथा ज्ञान उसके सहायक मात्र; ३–तिंगलों के अनुसार सब स्वतन्त्र मार्गों के फल में छोटाई-बड़ाई नहीं, बड़गलों के अनुसार और मार्गों से प्राप्त फल भक्ति से प्राप्त फल की बराबरी नहीं कर सकते; ४–तिंगलों के श्री (लक्ष्मी) अणु हैं, बड़गलों के अनुसार विभु; ५–तिंगलों के अनुसार श्री पुरुषद्वार है, भक्तों को भगवान के पास निवेदित करती है; बड़गलों के अनुसार वह उपाय है, भक्तों को स्वयं तारती है; ६–तिंगलों के अनुसार भगवान की दया इसमें है कि वे भक्त के दुःखों को सह नहीं सकते, बड़गलों के अनुसार इसमें कि वे भक्त के दुःखों का निवारण कर देते हैं, ७–तिंगलों के अनुसार भक्तों के दोषों को भगवान स्वयं भोगते हैं, बड़गलों

वाद्रि (नारायण), घटिकाचल (नरसिंह), वारणाचल (वरदराज), काञ्ची (कमल लोचन), तोताद्रि (सुंगशय) इत्यादि।

अन्वय प्रकाशकार ने यह संख्या पूरी १०८ कर दी है। संभवतः इन स्थानों में सतत निवास करना गृहस्थों के लिए नहीं केवल विरक्तों के ही लिए ही आवश्यक रूप से विधेय है।

पंच-संस्कार-युक्त सर्वगुणोपेत वैष्णव की पूजा करने; उसका चरणामृत पीने, उसकी संगति करने से, उसको प्रणाम करने और उसका उच्छिष्ट भोजन करने से कोटि जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं (१५१)।

के अनुसार वे दोषों की उपेक्षा कर देते हैं, ८–तिंगलों के अनुसार समर्थ-असमर्थ सभी प्रपत्ति के अधिकारी हैं, बड़गलों के अनुसार केवल असमर्थ ही उसके अधिकारी हैं; ९–तिंगलों के अनुसार प्रपत्ति के अंगों में कमी हो जाने पर भी प्रपत्ति में कमी नहीं आती, बड़गलों के अनुसार इससे प्रपत्ति में कमी आजाती है; १०–तिंगलों के अनुसार कर्म, योग आदि स्वतंत्र मार्ग प्रपत्ति के विरोधी हैं, बड़गलों के अनुसार ये प्रपत्ति के विरोधी नहीं हैं; ११–तिंगलों के अनुसार श्रुति, स्मृति विहित वर्णाश्रम धर्म का पालन लोक-संग्रह के लिए करना चाहिए, बड़गलों के अनुसार भगवान को आज्ञा समझ कर करना चाहिए। १२–तिंगलों के अनुसार न्यास से भगवान प्रसन्न होते हैं, बड़गलों के अनुसार न्यास मोक्ष का कारण है। १३–तिंगलों के अनुसार निकृष्ट वर्ण के भगवद्भक्तों की सेवा उत्कृष्ट वर्ण के वैष्णवों को भी करनी चाहिए पर बड़गलों के अनुसार ऐसा नहीं होना चाहिए। १४–तिंगलों के अनुसार भगवान जीव में अणु रूप से व्याप्त हैं, और उसको छोड़ सर्वत्र विभु रूप से, बड़गलों के अनुसार सर्वत्र विभु रूप से। १५–तिंगलों के अनुसार कैवल्य विरजा पार होने पर होता है, बड़गलों के अनुसार विरजा के इसी पार कैवल्य हो जाता है।

इनमें कुछ भेद तो केवल बात की बात है। स्वामी रामानंद भास्कर के अनुसार तिंगल के अंतर्गत आते हैं। और टीकाकारों ने समझाने में दूसरी बात लिखकर उसे समझाया है।

रामानन्द संप्रदाय में रामानुज संप्रदाय से कई बातों में भेद पड़ गया है। रामानुज संप्रदाय में नारायण रूप में भगवत् की उपासना होती है, रामानंद सप्रदाय में राम रूप में। रामानुज मत में अष्टाक्षर नारायण मंत्र दिया जाता है, यहाँ षडक्षर राम मंत्र। वैशिवादि देवताओं से अनुकूल भाव नहीं रखते,*

* उनके कुछ आचार्यों ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि वे राम, नरसिंह आदि के मंत्रों को देते हैं। बहुधा ऐसा अपना प्रभुत्व और शिष्य संप्रदाय की वृद्धि के लिए लोग करते हैं किंतु वे और मंत्र अपने प्रधान मंत्र की बराबरी के नहीं समझे जाते। जैसे आजकल भी लोग शिवमंत्र के सहारे जिसका उनको अधिकार नहीं समाज सुधारक बन जाते हैं और नारायण मंत्र को छिपा रखते हैं। इस प्रकार रामानुज संप्रदाय में नारायण मंत्र की ही प्रधानता है और दक्षिण में शैवों और वैष्णवों में जैसी घोर अनबन थी उसे देखते शिवोपासकों से उनके सौहार्द की आशा करना व्यर्थ है।

यहाँ अनुकूल भाव रखा जाता है। उनमें सन्यासी कोई बिरले होते हैं, प्रायः सब गृहस्थ ही होते हैं, इनमें विरक्त रहने ही की चाल है। वे जटा, भस्मादि कदापि धारण नहीं करते, इनमें जटा भस्मधारी विरक्त भी देखे जाते हैं। उनमें प्रायः गद्दीधर आचार्य ही दीक्षा दिया करते हैं, इनमें सभी महात्मा। वे अन्य वैष्णवों को हेय समझते हैं, इनमें अन्यों के साथ सौहार्द रहता है, और खान-पान, सेवा-सत्कार भी चलता है। उनके यहाँ गद्दियों में माला या चरनपादुका नहीं रहतीं, इनके यहाँ पूजी जाती हैं। उनके मन्दिरों में श्री शटकोप आदि के विधान ही अलग होते हैं, इनके यहाँ नहीं। इनके यहाँ स्वभावतया रामानंद से इधर के ही गुरुओं की प्रधानता मानी जाती है उधरवालों की उतनी नहीं। स्वामी रामानंद की पादुकाओं का होना सुना जाता है, किंतु रामानुज स्वामी आदि की नहीं।

जहाँ तक विष्णु के अवतारों का संबंध है, वहाँ तक श्री वैष्णवों में सौहार्द की भावना दिखाई देती है। रामानुज की पूर्व परंपरा में वोपदेव हुए हैं वे श्रीमद्भागवत के उद्धारक प्रसिद्ध हैं, नाभा जी ने भी ऐसा लिखा है*। इसी प्रकार इन पूर्वाचार्यों में एक राम मिश्र हुए जिन्होंने अध्यात्म रामायण लिखी या प्रचार किया।

इन दोनों की (भास्कर और हिंदी रचनाओं की) जब हम तुलना करते हैं तो इनमें कुछ साम्य और कुछ असमानता दिखलाई देती है। दोनों में सबसे बड़ी असमानता दार्शनिक सिद्धांत की है। भास्कर के अनुसार ब्रह्म का त्रिक स्वरूप है, हिंदी रचनाओं में अद्वैत स्वरूप है। भास्कर सांप्रदायिक ग्रंथ है, परंतु हिंदी रचनाओं में उन सब सांप्रदायिक लक्षणों का जिनका पिछले अध्याय में उल्लेख किया जा चुका है, सर्वथा अभाव ही नहीं उनका स्पष्ट निराकरण भी किया गया है। मोक्ष-प्राप्ति के बाहरी उपाय सब व्यर्थ बतलाये गये हैं।...शरीर में चंदन आदि का लेप करते थे। तीर्थाटन करते थे। मंदिरों में विग्रह की पूजा करते थे। कबीरपंथी परंपराओं के अनुसार वे इतने कट्टर थे कि देवविग्रह के ऊपर किसी की छाया भी नहीं पड़ने देते थे। म्लेच्छों से आड़ा परदा देके बात करते थे। परंतु यह बात बहुत दिन तक नहीं रही। अंत में उनका जब अभ्यास बढ़ा और ज्ञान की शिखा हृदय में जागरित हुई तो सब भेद-भाव जल गये। तीर्थों को उन्होंने पानी और मूर्तियों

---

* वोपदेव भागवत लुप्त उधर्‍यो नवनीता॥ मूल, २५।

को पत्थर कहा है। श्रुति स्मृतियों को अनुसंधान कर छोड़ देने की बात कही है। माधवदास सनाढ्य ने अपने गुरु दादू की जीवनी लिखी है। उससे पता चलता है कि रामानंद, कंठी, माला, तिलक वाले, भेष प्रवर्तक (?) किया था। परंतु इन बाहरी चिन्हों से उनका अभिप्राय दूसरा ही था। लोगों ने इनको स्वांगमात्र बना दिया है*। रामानंद ने अटूट मन की माला से (उपमा) दी। वह कंठी नहीं जो टूट भी सकती है। सिर पर तिलक के बदले ज्ञान तिलक को सिर पर चढ़ाया। ब्रह्म की उपासना और अजपाजाप का उपदेश दिया।

परंतु दोनों में जो समानता है, वह बड़ी महत्व की है। हिंदी रचनाओं में सुरति को जो महत्व दिया गया है, वही भास्कर में संस्मृति को है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से सुरति और स्मृति एक ही है†। संस्कृत का स्मृति ही हिंदी सुरति हो गया है। इनमें रूप ही का नहीं अर्थ का भी कोई भेद नहीं है। साधन की दृष्टि से भी सुरति और स्मृति एक ही है। भास्कर में स्मृति को यहाँ तक महत्व दिया गया है कि प्रपत्ति का भाव यदि टूट जाय तो की हुई प्रपत्ति के स्मरण से प्रायश्चित्त हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि स्मृति शब्द का प्रयोग ढीला-ढाला सा नहीं हुआ है। उसका अर्थ पूर्वानुभूत की पुनरनुभूति के उद्देश्य से मन का उसकी ओर बहाव है। वह उलटा प्रवाह है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रेम-तत्त्व जिसका हिंदी रचनाओं में स्पष्ट उल्लेख है उसको भास्कर ने भी स्वीकार किया है। ईश्वर और जीव के जितने संबंध माने गये हैं उनमें भार्याभितृ त्व, भोग्यभोक्तृत्व आदि भी हैं। भोग्यभूत जितने विषय विश्व में हैं उन सबका रमणाश्रयत्व राम में है।

श्रुति स्मृतियों के प्रति दोनों की प्रायः एक सी भावना है। हिंदी रचनाओं

---

* आप कही किन भेष चलावत मालही कंठी किन धारा।
संत कहै गुर थाप रामानंद माहीं टीका कंठी विस्तारा।
आप कही हम जान रामानंद संत भये कुल भासैं लषारा।
भेष बनाय कहावत साधन स्वांग प्रमोद किसे अनुसारा ॥ १४ ॥—
माधवदास सनाढ्य।

† देखिए डा० बड़थ्वाल के निबंधों का संग्रह 'योग-प्रवाह' (प्रकाशक, काशी विद्यापीठ) में 'सुरति निरति' लेख, पृष्ठ २३

—संपादक

में वे देखकर छोड़ दी गई हैं, संस्कृत रचना में केवल लोक संग्रह के लिए उनके अनुकूल चलना चाहिए अन्यथा उनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

[उद्वैत] अद्वैत का सिद्धांत सहसा उदित नहीं हुआ। बौद्धों का निरात्मवादी शून्यवाद धीरे धीरे परिवर्तित होता गया और गौड़पाद तथा शंकराचार्य में आकर वह आत्मवाती अद्वैतवाद हो गया। शंकराचार्य के पीछे अद्वैतवाद का इतना महत्त्व हुआ कि जो वस्तुतः अद्वैतवादी नहीं हैं उनको भी अपना सिद्धांत किसी प्रकार का अद्वैत बताना रुचिकर प्रतीत हुआ। रामानुज का सिद्धांत सच में त्रैतवाद है, किंतु उन्होंने उसे तोड़-मरोड़ कर विशिष्टाद्वैत कर दिया। वल्लभाचार्य द्वैतवादी हैं, किंतु उनका सिद्धांत शुद्धाद्वैत कहा गया इसी प्रकार द्वैताद्वैत हुआ।

जब रामानुज का सिद्धांत उत्तरभारत में आया उस समय यहाँ की जनता सिद्धों और योगियों को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने में निरत थी। योगियों की विचार-पद्धति सर्वथा अद्वैतवाद के अनुकूल हो गयी थी और अपने षट्कर्म अष्टांग आदिकों से जिस कैवल्य समाधि को लाभ करते थे वह कालवंचन होने के साथ-साथ आत्मलाभ की प्रतीक हो गई थी। आत्मलाभ और कालवंचन समानार्थी हो गये थे। इन्हीं लोगों में सबने अपना नये-नये सिद्धांतों का प्रचार किया।

रामानुजीत्रिक ब्रह्म भी रामानंद के मत के अनुकूल नहीं जान पड़ता। रामानंद ने पहले शिक्षा काशी में किसी अद्वैतवादी आचार्य के यहाँ पायी। कार्पेंटर ने अपने थीज्म में यह लिखा है। अद्वैतवादी उन्हे अपने ज्योतिर्मठ मानते हैं.........।

उधर सर्वथा अद्वैतवादी मत को माननेवाले निर्गुणी कबीर उनके शिष्य हुए हैं। इसी प्रकार निरंजनी जो उनसे अपनी परंपरा मिलाते हैं अद्वैत-वादी हैं। यही बात नाथपंथी योगियों के संबंध में है। रामानंद के गुरू राघवानंद भी स्वयं अद्वैत के माननेवाले थे। उनसे छठी पीढ़ी में होनेवाले मिहीलाल ने उनको अवधूत वेश कहा है--

धनि धनि सो मेरे भाग श्रीगुरु आये हैं,
श्री अवधूत वेष को धारे राघवानंद सोई
तिनके रामानन्द जग जाने कलि कल्यान मई*

--गुरु प्रकारी ग्रंथ, २

---

* द्रष्टव्य खोज-विवरणिका ना० प्र० स० १६०० सं० ५८ और डा०

बात यह है कि रामानुज नवीन सिद्धांत के नवोत्साह के साथ यश से स्फीत होने के कारण अप्रतिकार्य वातावरण के साथ उत्तर में आये। उनकी कीर्ति ने अधिकांशों को उनके सम्मुख नत किया। बहुत से प्रसिद्ध स्थानों के लोग उनके अनुयायी हुए। किंतु उनके बीच रहने को वे नहीं आये थे। उनके दक्षिण चले जाने पर (वे) फिर अपने पूर्व भावों, विचारों और पद्धतियों में मग्न हो गये। राघवानंद इसी प्रकार की उनकी परंपरा में थे। पंचमात्रा में और सिद्धांत पटल के अन्य मंत्रों में राघवानंद ने रामानंद को जो उपदेश दिया, वह अवधूत शब्दावली से भरा है। अवधूतों की विचारावली समझाने के लिए एक बहुत सुंदर उदाहरण मजाहिब दबिस्तान में है। अवधूत शब्द ही से दत्तात्रेय की ओर ध्यान जाता है। दत्तात्रेय और गोरख के बीच एक बार होड़ हो गयी। गोरखनाथ मेंढ़क बनकर पानी में जा छिपा दत्तात्रेय उसे पकड़ लाया। फिर दत्तात्रेय पानी ही बन पानी में मिल गया और गोरखनाथ उसे नहीं खोज सका। यह कहानी बौद्धों के ऊपर अद्वैतवाद के प्रभाव की प्रतीक है। योगसिद्धियों के पीछे पचनेवालों को ब्रह्मलीन होने का पाठ है। इस पाठ को योगियों और नाथों ने अच्छी तरह पढ़ा। राघवानंद बाहर से रामानुज संप्रदाय में होते हुए भी वस्तुतः इन्हीं योगी-नाथों के उत्तराधिकारी हैं और उनसे पायी हुई सामग्री को उन्होंने रामानंद को दिया।

दक्षिणी आचार्यों ने भी समय बीतने पर इस बात का अनुभव किया कि यदि अपना विस्तार उत्तर में रखना है तो उनके ऊपर कट्टर प्रतिबंध न रखना आवश्यक है, इस लिए उन्होंने भी इस बात को स्वीकार किया कि हमारे यहाँ केवल नारायण मंत्र ही नहीं सब प्रकार के मंत्र दिये जाते हैं।

(जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है) जिस समय रामानुज ने अपने वैष्णवमत का उत्तर भारत में प्रचार किया उस समय यहाँ की जनता सिद्धों और योगियों को अपनी श्रद्धांजलि समर्पित कर रही थी। यत्र-तत्र योग की सिद्धियों की धूम थी वास्तव में न सही तो कहानियों में। योग साधनों का प्रचार चारों ओर था।

बड़थ्वाल के निबंधों का संग्रह 'योग प्रवाह' (काशी विद्यापीठ) में 'स्वामी राघवानंद और सिद्धांतपंचमात्रा' वाला लेख का पृष्ठ ३।

सिद्धांत पंचमात्रा और सिद्धांत पटल के अन्य मंत्र रामानंद से निस्सृत उस सरल मत के जिसे सामान्य और समंजसमय धर्म कहना चाहिए, प्रतिनिधि हैं जिसमें प्राचीन बातें कोई छोड़ी नहीं गयीं और नवीनों का उनके अनरूप ग्रहण किया। इसमें पंचमात्रा राघवानंद के नाम से है। सिद्धांतपटल के कर्ता रामानंद कहे गये हैं। परसादी मंत्र रामानुज के नाम से हैं। कबीर की गोरक्ष के ऊपर विजय बताई गयी है पर योग की कोई बात छोड़ी नहीं गई है। पुनर्प्रवर्तित नव वैष्णव धर्म की बातें इसमें ग्रहण की गई हैं, किंतु प्राचीनता के साथ। वैष्णवों के शालिग्राम स्वीकार किये गये हैं किंतु आसन प्राप्त हुआ है, उन्हें त्रिकुटी* (योग की) में ही। कामधेनु मंत्र में गो महिमा कही गयी है, उसके देवता परशुराम हैं। क्योंकि (उन्होंने) कामधेनु को छीन ले जानेवाले सहस्रबाहु की भुजाओं का छेदन कर उसका हनन किया था। महत्त्व गोरक्षा को दिया गया है भुजा छेदन को नहीं। इसीलिए संभवतः काठ की कटारी और बेल की तुमची का उल्लेख हुआ है†, जिससे यह अभिप्राय जान पड़ता है कि पंथों में प्रचलित शस्त्रास्त्र प्रयोग उपयुक्त नहीं है। यगोपवीत का मंत्र है और केवल यज्ञोपवीत के सबंध में संस्कृत का प्रयोग है। सिद्धांत पटल में सत्य निरंजन-तारक, विभूति-पलटन, लंगोटी आड़बंद, तुलसी, रामबीज आदि कई विषयों के मंत्र हैं, जिनमें योग और वैष्णव मत का समिश्र रूप दिखाई देता है। विभूति, धूनी, झोली आदि के साथ-साथ उसमें शालिग्राम, तुलसी आदि का भी आदर हुआ है। रामानंद जी का आवाहन अवधूत योगी के रूप में किया गया है—

सामान्य और समंजसमय धर्म

ॐ अब जागे श्रीगुरु रामानंद अवधूता। सेली सिंगी जंग जगोटा पत्र पावड़ी दंडक छोटा।

कुछ रामानंदी तो जो संप्रदाय के भीतर समझे जाते हैं जटा रखते हैं

---

* शब्द स्वरूपी श्रीगुरु राघवानंद जी ने श्रीरामानंद जी कू सुनाया भरे भंडार काया बाढ़ै त्रिकुटी अस्थान जहाँ बसे श्री सालिग्राम ॥ ॐ कार हाहाकार सुनती सुनती संसै मिटै ॥ इति अमर बीज मंत्र ॥ १७—सिद्धांत पटल

† देखिए डा० बड़थ्वाल का निबंध-संग्रह (काशी विद्यापीठ) में स्वामी राघवानंद और सिद्धांत पंचमात्रा' लेख का पृष्ठ, २१।

और विभूति का व्यवहार करते हैं और पादुका पधराते और पूजते हैं। यहाँ पर एक मंत्र का उद्धरण देना ठीक होगा—

ॐ चार खानी चार बानी चंद्र सूर्य पवन पानी ।। हाथी फावरी कांधे लता अनंत कोटि वैष्णव धूनी की करो मता अलख अलेख माटी को बन्यो गलेफ। कहे कबीर सुनो जमाल। पंच धूनी चेता वहाल इति पंच धूनी मंत्र : ४०

स्वामी रामानंद एक संप्रदाय में सीमित रहनेवाले व्यक्तियों में नहीं हैं, उनका प्रभाव बड़ा विस्तृत था। रामानंद संप्रदाय तो उनका है ही, इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र में नाथपंथी उन्हें अपनाते हैं। प्रसिद्ध संत ज्ञानदेव नाथ-पंथी परिवार में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता विठ्ठल पंत रामानंद के शिष्य माने जाते हैं। इसी प्रकार मराठी उद्धव और नयन अपने को नाथपंथी मानते थे फिर भी अपनी गुरु परंपरा रामानंद से आरंभ करते थे। उनकी गुरु परंपरा इस प्रकार है—रामानंद—अनंतानंद—कृष्णानंद—अग्रानंद—अमरानंद—गोवर्द्धन स्वामी—काशीराम—उद्धव—नयन*। इसमें संदेह नहीं कि कृष्णानंद और अग्रानद प्रसिद्ध कृष्णदास पयहारी और अग्रदास जी ही हैं। इधर अद्वैत संप्रदाय वाले उन्हें ज्योतिर्मठ का ब्रह्मचारी बताते हैं। उधर संत यारी की परंपरा भी उन्हीं से आरंभ की जाती है, रामानंद—दयानंद—मायानंद—बावरी—बारू—यारी। बावरी का समय अकबर (सन् १५५६–१६०५ ई०) से पूर्व माना जाता है।

उनकी सर्वप्रियता का एक और भी कारण जान पड़ता है। वे ऐसे समय में हुए जब चारों ओर बड़ी अशांति और अव्यवस्था फैली हुई थी। शासक अपना कर वसूल करने तक अपना संबंध रखते थे। अधिकतर अपने धन-जन की रक्षा का विचार बहुधा लोगों को स्वयं रखना पड़ता था। इसके साथ धार्मिक असहिष्णुता ने धर्म प्राणों के लिए समय को कठोर तथा प्रतिकूल बना दिया था। स्वतंत्रता के साथ धर्म कृत्य करना कठिन काम-सा था। साधु-जनों को इस बात का तीव्र अनुभव होने लगा था कि इस अवस्था से त्राण होना आवश्यक है। उनसे लगभग एक शताब्दी पीछे होनेवाले वल्लभाचार्य जी ने कृष्ण से प्रार्थना की, म्लेच्छों से दबाये गये देशों में जहाँ पाप का घर

---

* ज्ञानेश्वर दर्शन, भाग १, पृष्ठ

ह सज्जन सताये जाते हैं ,हे कृष्ण आपही मेरी रक्षा करनेवाले हैं*। इसके साथ झूठी मान-मर्यादा के कारण आपसी कलह अलग हिंदुओं को ही नहीं संत समाज को भी खंड मंडन किये हुए थे। सिद्धांत पंचमात्रा और अन्यत्र भी उनके चार संप्रदाय और बावन द्वारे कहे गये हैं। स्वयं तो चार संप्रदायों के आचार्य नहीं थे। परंतु ऐसा जान पड़ता है कि चारों वैष्णव संप्रदायों में अपने समय में उनकी धाक थी। सब उनका मान करते थे। गरीबदास ने कहा है कि चारों संप्रदायों में उनकी टेक थी, इसका कारण यही समझ पड़ता है। जान पड़ता है कि स्वामी रामानंद ने चतुः संप्रदाय को एकत्र करके संगठित किया। और अखाड़े संगठित हुए जिनमें नागे (और) अतीत आदि शस्त्रास्त्र विद्या में पारंगत होने लगे! जान पड़ता है कि नागा बड़े अच्छे सैनिक होते हैं। बीकानेर रजवाड़े की सेना में वे बहुत भर्ती होते हैं। संप्रदाय में भी राम के शस्त्रास्त्रों का बड़ा महत्त्व माना जाता है। वैष्णव मताब्ज भास्कर में एक बड़े से श्लोक में अलग ही शस्त्रास्त्रों का स्तवन किया गया है। अवरोध की यह भावना उस समय के वातावरण में व्याप्त हो गयी। इससे उनके चार संप्रदाय और बावन द्वारे होना कहा गया है। दबिस्ताने मजाहिब में इसका एक उदाहरण दिया हुआ है। सिंध में मदारियों और जलालियों ने एक तीर्थस्थान पर गोहत्या करनी चाही। गोहत्या रोकने के लिए सन्यासियों ने कई गुना अधिक दाम देकर दो गायों को मोल ले लिया। किंतु मुसलमान तीसरी गाय ले आये और उसकी हत्या की। फिर तो घमासान युद्ध हो गया। सात सौ मुसलमान मारे गये और उनके बच्चों को हिंदुओं ने पाला...२०७। और इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि जब हिंदू तीर्थस्थानों में गो हत्या के प्रयत्न और नरम उपायों से न रोके जा सके तो अपने प्राणों की परवा न कर साधुओं ने घमासान युद्ध कर पृथ्वी को पाट दिया।

---

* म्लेच्छाक्रांतेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च।
सत्त्यपीड़ाव्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥—कृष्णाश्रम स्तोत्र

† उत्तरी 'भारत की संत परंपरा' पृष्ठ ४७६ (लेखक, पशुराम चतुर्वेदी) में बावरी पंथ के प्रवर्तक स्वा० रामानंद को पटना (गाजीपुर) का निवासी लिखा है जो उक्त पंथ के 'महात्माओं की वाणी' के आधार पर है, जिसके संशोधक श्री रामलगन लाल 'क्षेम' हैं। परंतु इधर भुड़कुडा (गाजीपुर) के

उदारता का उनके (रामानंद के) नाम के साथ अटूट नाता जुड़ गया है। जाति पांति पूछै नहिं कोई। हरिको भजै सो हरि का होई–– उनका नाम लेते ही यह अर्धाली स्मृति में चमक उठती है। जिन शूद्रों के लिए आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग, समाज में सिर उठाकर रहने का अधिकार सदा के लिए बंद कर दिया गया था उनके लिए उन्होंने भगवान की दया का द्वार खोल दिया। अज्ञान के अंधकार में से ज्ञान के प्रकाश में जाने का मार्ग खोल दिया, अपने को भी मनुष्य समझने का अधिकार प्रदान कर दिया। उन्होंने भगवान के समक्ष किसी को ऊँच-नीच नहीं ठहराया। भक्ति के लिए उन्होंने ऊँच-नीच सबको एक बराबर समझा। उनके नाम से चलनेवाले संप्रदाय और बातें चाहे जितनी बाहर से जुड़ गई हों किंतु धर्म के क्षेत्र में सबकी समानता अबतक बनी हुई है। वैष्णवमताब्जभास्कर जो मर्यादा-बद्ध सांप्रदायिक ग्रंथ है, उसमें भी इस बात का स्पष्ट आदेश है, कि ऊँच नीच सब प्रपत्ति के अधिकारी हैं। उच्च वर्ण वैष्णवों के लिए एक मंत्र और नीच वर्णवालों के लिए दूसरा, उच्चवर्ण वालों के लिए एक पद्धति और नीच वर्णवालों के लिए दूसरी पद्धति उन्होंने नहीं मानी है। भगवान के समक्ष ऊँच-नीच का भेद नहीं। यहाँ तक कि भास्कर में यह भी स्पष्ट आदेश है कि उच्च वर्ण के वैष्णव भी नीच वर्ण के साधु संतों की सेवा अभ्यर्थना करें।

यही नहीं उन्होंने उन हिंदुओं को भी अपनाया जो बल से मुसलमान बना लिये गये थे। हिंदू धर्म से बिछुड़े हुए पूर्वजों को स्वामी रामानंद ने फिर से हिंदू धर्म की गोद में स्थान दिया था। इसी प्रकार संयोगियों को, जिन्हें फैजाबाद के नवाब ने बल से मुसलमान बना लिया था उन्होंने हिंदू

महंत, बाबा रामबरनदास साहेब (प्रकाशक, महात्माओं की वाणी) और उक्त संशोधक श्री रामलगन 'क्षेम' (मंदरा, गाजीपुर) के द्वारा विशेष पता चला कि वे पटना निवासी रामानंद और काशी निवासी (पंचगंगाघाट) रामानंद को एक ही मानते हैं। उनका कहना है कि अनंतानंद, कबीर और रैदास आदि के गुरू जो रामानंद हैं वही बावरी पंथ के भी प्रवर्तक थे। उस समय काशी का विस्तार पटना (औंरिहार के पास गंगा के तट पर) तक था। इस संबंध में श्री रामलगनलाल 'क्षेम' का पत्र काशी नागरीप्रचारिणी सभा के खोज विभाग में सुरक्षित है।

—संपादक

बनाया। रामानंद के योग प्रभाव से उन लोगों के गले में तुलसी की माला, जिह्वा पर राम नाम और मस्तक पर त्रिशूलाकार श्वेत रक्त-तिलक अपने आप प्रकट हो गया। इससे जान पड़ता है कि धर्म में पुनर्दीक्षा की कथा साधार है।

उन्होंने यह वातावरण उपस्थित कर दिया जिसमें हिंदूधर्म एक निष्क्रिय संस्था मात्र नहीं रह गया प्रत्युत वस्तुतः विश्व बंधुत्व की ओर सक्रिय रूप से अग्रसर होने वाली सजीव पुष्ट संस्था हो गयी। उनका वैरागी समाज इस बात का पुष्ट प्रमाण है जिसमें केवल नीच जाति के ही शिष्य नहीं हैं प्रत्युत एक जात-मुसलमान भी प्रमुख शिष्य हो गया जिसने हिंदुओं के दार्शनिक सिद्धांतों का अत्यंत प्रचार किया। दबिस्तान मजाहिब में लिखा है कि उसके समय के पूर्व या उसके समय में बहुत से मुसलमान हिंदू बना लिये गये थे। उनमें से दो मिर्जा मलीद और मिर्जा हैदर मुस्लिम अमीर थे जिनका नाम फनी ने इस प्रकार लिया है मानो वे स्वयं उनको जानते थे*। यह सब उसी वातावरण का प्रभाव था जिसको रामानंद का क्रिया-कलाप अस्तित्व में लाया था। उनके पूर्ववर्ती योगियों में भी यह भावना थी, उन्होंने भी मुसलमानों को धर्म प्रसार में तलवार का प्रयोग करने के लिए फटकारा था। परंतु वे विशेषकर एक निष्पक्षता का ऐलान करते ही रह गये। स्वामी रामानंद उन लोगों में से थे (जो) अपने प्रयत्नों को अन्याय के निष्क्रिय विरोध ही तक सीमित नहीं रखते प्रत्युत उनके निराकरण में उन्हें सक्रिय रूप देते हैं। खान-पान के संबंध में भी उन्होंने नियमों को संभवतः बहुत शिथिल कर दिया था। उनके शिष्य सुरसुरानंद के संबंध में नाभा जी ने कहा है कि उनके मुख में म्लेच्छ की रोटी भी तुलसीदल हो जाती थी†।

---

* पृष्ठ, २०३।

† भक्तमाल मूल छप्पय, ६५।

स्वामी रामानंद का जीवन-चरित्र

स्वामी रामानंद का समय रामावत सम्प्रदाय के अनुसार पूर्णतः निश्चित है। उनका जन्म प्रयाग में माघ कृष्ण सप्तमी संवत् १३५६ विक्रमी में हुआ और वैशाख शुक्ल तृतीया संवत् १४६७ वि० को वे साकेत धाम पधारे। रामानंदी वैष्णव रामानंदाब्द का व्यवहार करते हैं। अयोध्यावासी अवधकिशोर दास 'श्री वैष्णव' ने विक्रमी सं० १९९२ में 'श्री रामानंद नाटक' लिखा जिसमें रामानंदाब्द ६३६ दिया गया है। इससे भी जान पड़ता है कि संप्रदाय के अनुसार स्वामी रामानंद का अवतरण काल सं० १३५६ वि० है। 'अगस्त्य संहिता' के अनुसार स्वामी जी का अवतार कलियुग के ४४०० वर्ष व्यतीत होने पर हुआ था जो गणित करने पर सं० १३५६ वि० अथवा १३०० ई० सन् ठहरता है। संप्रदाय के अनुसार स्वामी जी की अवस्था लगभग ११०-१११ वर्ष की मानी गई है जो किसी प्रकार असंगत नहीं कही जा सकती।

परंतु सम्प्रदाय-सम्मत तिथि मान लेने से दो तीन अन्य उल्लेखों की संगति नहीं बैठती। पहला विचारणीय उल्लेख 'श्री ज्ञानेश्वर चरित्र' में मिलता है जिसके लेखक 'मुमुक्षु' संपादक लक्ष्मण रामचंद्र पांगारकर और भाषांतर-कार लक्ष्मण नारायण गर्दे हैं। इस ग्रंथ के अनुसार श्री ज्ञानेश्वर महाराज के पिता विट्ठल पंत काशी के स्वामी रामानंद के शिष्य थे और चैतन्याश्रम नाम से प्रसिद्ध थे। एक बार स्वामी रामानंद सौ-पचास शिष्यों को साथ ले रामेश्वर यात्रा को निकले और संयोग वश आलंदी में डेरा डाला और ज्ञानेश्वर महाराज की माता रुक्मिणी बाई को 'पुत्रवती भव' कह कर आशीर्वाद दिया, जिसे सुन रुक्मिणी बाई को हँसी आ गई। हँसी का कारण पूछने पर स्वामी जी को ज्ञात हुआ कि वह उन्हीं के शिष्य चैतन्याश्रम की पत्नी है। वे रामेश्वर न जा सीधे काशी लौटे और चैतन्याश्रम को गृहस्थाश्रम में लौटने को विवश किया। गृहस्थ बनने के पश्चात् विट्ठल पंत की चार संतानें हुई जिनमें दूसरे पुत्र ज्ञानेश्वर थे, जिनका आविर्भाव काल सं० १३३२ वि०

ख

माना जाता है। इस उल्लेख के अनुसार स्वामी रामानंद का आविर्भाव काल सं० १३०० वि० से भी पूर्व मानना पड़ेगा।

दूसरा विचारणीय उल्लेख भविष्य पुराण में मिलता है जहाँ स्वामी जी के समय में सिकंदर लोदी का होना लिखा है। सिकंदर लोदी १४८९ ई० अर्थात् सं० १५४५–४६ वि० में दिल्ली का शासक हुआ, अस्तु, स्वामी जी का सं० १५४५–४६ तक जीवित रहना प्रमाणित होता है। तीसरा विचारणीय उल्लेख नाभादास के भक्तमाल में मिलता है जहाँ स्वामी जी के बारह प्रसिद्ध शिष्यों की नामावली इस प्रकार वर्णित है :

> अनंतानंद, कबीर, सुखा, सुरसुरा, पद्मावती, नरहरि।
> पीपा, भावानंद, रैदास, धना, सेन, सुरसुर की घरहरि।

इन शिष्यों में कबीर का समय सं० १४५५ से सं० १५७५ वि० तक माना गया है जिसके अनुसार स्वामी रामानंद का सं० १४७५ के आसपास तक जीवित रहना प्रमाणित होता है। एक दूसरे शिष्य पीपा का जन्म काल मैकालिफ के अनुसार सं० १४७० वि० के आसपास है जिससे स्वामी जी का सं० १४९० के आसपास तक जीवित रहने का प्रमाण मिलता है। एक तीसरा शिष्य सेन नाई बांधवगढ़ (रीवां) के बघेल राजा राजाराम अथवा रामचंद्र का समकालीन था जिनका राजत्व काल सं० १६११ से प्रारंभ होता है। इसके अनुसार स्वामी रामानंद की मृत्यु तिथि और भी आगे बढ़ जाने की संभावना है।

इन तीनों विचारणीय उल्लेखों में प्रथम उल्लेख की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ, परंतु पिछले दोनों उल्लेखों का ध्यान रखकर ही कतिपय विद्वानों ने स्वामी रामानंद की जन्म तिथि में परिवर्तन किया। सबसे पहले फ़र्क़ुहर ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'ऐन आउटलाइन ऑफ द रीलिजस लिटरेचर ऑफ इंडिया' में स्वामी रामानंद का समय १४०० ई० से १४७० ई० (अर्थात् सं० १४५६ से सं० १५२६) तक माना। इस निष्कर्ष पर पहुँचने का कारण स्पष्ट करते हुए विद्वान् लेखक ने लिखा है :

> उनके (स्वामी रामानंद के) राजा-शिष्य पीपा ई० सन् १४२५ में पैदा हुए थे, जब कि उनका एक दूसरा शिष्य कबीर, जान पड़ता है, १४४० ई० से १५१८ तक जीवित रहा। यह स्पष्ट है कि वह (कबीर) रामानंद का अंतिम शिष्य नहीं था। अस्तु, हम सत्य से बहुत दूर नहीं रहेंगे यदि हम अनुमान करें कि रामानंद लगभग १४०० ई० से १४७० तक जीवित रहे।

हम इस अनुमान में आगे पीछे दश वर्ष की ग़लती कर रहे होंगे, परंतु इससे अधिक की नहीं।[1]

'भागवत संप्रदाय' ग्रंथ में विद्वद्वर प्रो० बलदेव उपाध्याय इन्हीं पिछले उल्लेखों को ध्यान में रखकर स्वामी जी का समय १४१० ई० से १५१० ई० तक मानते हैं। उनका मत है :

स्वामी जी की जीवनी से संबद्ध ऊपर तीन घटनाओं का हमने उल्लेख किया है जो इनके काल के विषय में निर्णायक मानी जा सकती हैं—(१) स्वामी जी की सिकंदर लोदी के समय (१४८६–१५१७ ई०) विद्यमानता; (२) कबीरदास का लोदी से प्रौढ़ावस्था में भेंट होना; (३) स्वामी जी के अन्यतम शिष्य सेन भक्त की बांधवगढ़-नरेश राजाराम (सन् १५५४-१५६१) के समय में विद्यमानता। स्वामी जी की उम्र सौ वर्ष के ऊपर मानी जाती है। इन समस्त घटनाओं के तारतम्य से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वामी रामानंद जी का आविर्भाव काल १५ वीं शती (१४१० ई०—१५१० ई०) है। इस प्रामाण्य पर अगस्त्य संहिता के भविष्योत्तर खंड में स्वामी जी का जो आविर्भाव काल सं० १३५६ वि० (= १३०० ई०) दिया गया है वह प्रामाणिक कथमपि नहीं हो सकता क्योंकि ऊपर निर्दिष्ट घटनाओं का मेल इस समय से ठीक नहीं बैठता।[२]

इस प्रकार इन विद्वानों ने सम्प्रदाय-सम्मत स्वामी जी की मृत्यु तिथि को ही प्रायः उनका जन्म काल स्थिर किया और उनकी मृत्यु तिथि लगभग ८० से १०० वर्ष आगे खींच लाए।

---

1. His royal disciple Pipa was born in A. D. 1425, while another disciple, Kabir, seems to have lived from 1440 to 1518. It is clear that he was not Ramananda's latest disciple. Hence we shall not be far wrong if we suppose that Ramananda lived approximately from 1400 to 1470. We may be ten years wrong eithar way, but scarcely more.

—An outline of the Religious literature of India, 1920 edition, p. 323.

२. भागवत सम्प्रदाय—ले० बलदेव उपाध्याय, प्रथम संस्करण, सम्वत् २०१०, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी पृ० २५३.

कुछ अन्य विद्वानों ने स्वामी जी का जन्म समय सं० १३५६ विक्रमी तो स्वीकार कर लिया किन्तु उनकी मृत्यु तिथि के सम्बंध में सम्प्रदाय-सम्मत तिथि वे नहीं मान सके। कतिपय विद्वानों ने स्वामी जी की १११ बर्ष की अवस्था को बहुत अधिक समझा। ऐसे लोगों में स्वर्गीय डा० ग्रियर्सन का मत उल्लेखनीय है। जेम्स हेस्टिंग्स द्वारा सम्पादित 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एंड एथिक्स' के दशवें जिल्द में रामानंदी-रामावतों के सम्बंध में लिखते हुए वे कहते हैं :

जहां हम साधारणतः निश्चित रूप में मान सकते हैं कि रामानंद ईस्वी सन् १२९९ में पैदा हुए थे वहाँ उनकी मृत्यु तिथि में कुछ दुरूहता मिलती है। लोक प्रचलित परम्परा है कि वे सं० १४६७ (१४१० ई०) में मरे। इससे उनका जीवन काल १११ वर्षों का होता है जो असम्भाव्य जान पड़ता है।[1] अस्तु, वे स्वामी रामानंद को ईसा की चौदहवीं शताब्दी के अधिकांश वर्षों तक जीवित रहना स्वीकार करते हैं।[2]

१११ वर्ष की अवस्था कुछ ऐसी अधिक नहीं है जो असम्भाव्य जान पड़े। परंतु फिर भी अधिकांश विद्वान् इस अवस्था को बहुत अधिक समझते हैं। ग्रियर्सन के समान ही फ़र्कुहर भी स्वामी रामानंद की आयु ७०-८० वर्ष से अधिक नहीं मानते। इसका कारण यही जान पड़ता है कि मध्ययुग में विविध शासकों और महात्माओं का जो समय इतिहास में मिलता है उसमें अधिकांश राजा, आचार्य तथा महात्मा की आयु १०० वर्ष से बहुत कम ही मिलती है। राजपूत राजाओं में राणा सांगा, कुम्भा, प्रताप सिंह तथा मुसलमान शासकों में भी किसी राजा की अवस्था अधिक नहीं मिलती। फिर कुछ महात्माओं की अवस्था भी अधिक नहीं है। श्री ज्ञानेश्वर महाराज की मृत्यु २२ वर्ष की अवस्था में हुई थी; चैतन्य महाप्रभु और वल्लभाचार्य की आयु भी

---

1. While we may be fairly certain that Ramananda was born in A.D. 1299, the date of his death is involved in some obscurity. The popular tradition is that he died in Samvata 1467 (is equal to A. D. 1410). This would give him a life of 111 years which is improbable.

2. He lived during the greater part of the 14th Century A. D.

पचास-साठ वर्ष ही रही है। केवल कुछ ही राजा, बादशाह और कवि तथा आचार्य ऐसे हुए हैं जिन्हें ८० वर्ष की अवस्था मिली है, इसी कारण स्वामी रामानंद की १११ वर्ष की अवस्था भी लोगों को अधिक जान पड़ी।

'राम रसिकावली' के रचयिता महाराज रघुराज सिंह ने स्वामी रामानंद की आयु 'वर्ष सप्तशत' लिखी है जिसका अर्थ कुछ लोग ७०० वर्ष लगाते हैं जो ठीक नहीं है। कारण सात सौ वर्ष की आयु वाले स्वामी रामानंद को अब तक भी जीवित रहना चाहिए था क्योंकि उनकी जन्म तिथि से अभी तक भी ७०० वर्ष नहीं बीते हैं। अन्य विद्वान् इसका अर्थ १०७ वर्ष लगाते हैं जो किसी प्रकार असम्भाव्य नहीं जान पड़ता।

परंतु कुछ लोग ऐसे भी हैं जो स्वामी रामानंद की अवस्था १११ से भी अधिक मानते हैं। श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद रूपकला ने रामानंद संबंधी भक्तमाल के छप्पयों पर वार्त्तिक तिलक में लिखा है:

कोई कोई लिखते हैं कि स्वामी रामानंद जी महाराज इस संसार को त्याग संवत् १५०५ में श्री साकेत धाम गये १४८ वर्ष यहाँ विराजे थे।[1] इस १५०५ सम्वत् की पुष्टि चेतनदास द्वारा रचित 'प्रसंग पारिजात' से भी हो जाती है जो देव बाड़ी प्राकृत में पिशाच भाषा के सांकेतिक शब्दों के योग से अदना छंदों में लिखी गई है। इसमें स्वामी रामानंद का समस्त जीवन-वृत्त दिया गया है और इसका रचना काल सं० १५१७ और लिपि काल सं० १६६७ वि० है।[2] अब तो रामानंदी सम्प्रदाय वाले भी यह मानने लग गए हैं कि "जिस प्रकार से श्री स्वामी जी का अवतार सम्वत् शास्त्रीय नियत संवत् है उस प्रकार से उनके साकेत गमन का नियत संवत् नहीं है। परधाम-गमन काल में साम्प्रदायिकों का विवाद है।"[3] अस्तु, अधिकांश सम्प्रदाय वाले भी अब सं० १५०५ को ही स्वामी जी की मृत्यु तिथि मानने लगे हैं।

---

१. श्री भक्तमाल सटीक—श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद रूपकला विरचित भक्तिसुधास्वाद तिलक सहित—तीसरी बार, १६५१ ई० पृ० ९८२ अंत में।

२. देखिए भागवत सम्प्रदाय—बलदेव उपाध्याय—प्रकाशक नागरी प्र० सभा काशी सं० २०१० पृ० २६७ से ३०७ तक।

३. श्री मद्रामानंद दिग्विजयः—श्री भगवद्दास वेदरत्न विरचितः प्रथमावृत्ति, १६८४ वि०, भूमिका पृ० ३३।

इन सब मतों में 'श्री ज्ञानेश्वर चरित्र' के उल्लेख की संगति बैठाने का प्रयत्न बिलकुल ही नहीं हुआ। कारण यह जान पड़ता है कि उस उल्लेख की संगति बैठाने में स्वामी रामानंद का आविर्भाव काल लगभग ६० वर्ष पहले ले जाना पड़ेगा और इस प्रकार उनकी आयु लगभग २०० वर्षों की माननी पड़ेगी। फिर 'ज्ञानेश्वर-चरित्र' की प्रामाणिकता वैसी असंदिग्ध भी नहीं है जैसी नाभादास के भक्तमाल की क्योंकि उसके उल्लेख की पुष्टि अन्य किसी उल्लेख से नहीं हो पाती। इसी प्रकार भविष्य पुराण के इस उल्लेख की भी संगति नहीं बैठ सकी कि स्वामी जी सिकंदर लोदी के समय में विद्यमान थे। सिकंदर लोदी के समय में स्वामी जी की विद्यमानता भी किसी अन्य प्रमाण से पुष्ट नहीं हो सकी। स्वयं भविष्य पुराण में भी जो इसका उल्लेख है उससे स्वामी जी का सिकदर लोदी के समय में विद्यमान रहना अनिवार्य नहीं जान पड़ता। उल्लेख इस प्रकार है :

> म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानदप्रभावतः।
> संयोगिनश्च ते ज्ञेया अयोध्यायां बभूविरे।

अर्थात् अयोध्यापुरी में बादशाह सिकंदर लोदी ने अपने एक यंत्र द्वारा जिन जिन हिन्दुओं को म्लेच्छ बना लिया था उन्हें स्वामी रामानंद के शिष्यों ने स्वामी जी के प्रभाव से वैष्णव बना लिया। यहाँ वैष्णव बनाने वाले स्वामी रामानंद के शिष्य थे और यह कार्य स्वामी जी के प्रभाव से वे करते थे। इससे स्वामी जी की विद्यमानता असंदिग्ध प्रमाणित नहीं होती क्योंकि स्वामी जी का प्रभाव उनकी मृत्यु के पश्चात् भी रह सकता है और निश्चय ही रहा होगा।

भक्तमाल के उल्लेखों की संगति बैठाने का प्रयत्न सबसे अधिक हुआ क्योंकि भक्तमाल के उल्लेखों की पुष्टि कई अन्य प्रमाणों द्वारा होती है और उसकी प्रामाणिकता भी असंदिग्ध है। नाभादास रामानंदी सम्प्रदाय के ही साधु थे जिनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है :

रामानंद—अनतानंद—कृष्णदास पयहारी—अग्रदास—नाभादास।

नाभादास ने रामानंद जी के सम्बंध में निम्न छप्पय लिखे हैं :

> श्री रामानंद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो।
> अनंतानंद, कबीर, सुखा, सुरसुरा, पद्मावति, नरहरि।
> पीपा, भावानंद, रैदास, धना, सेन, सुरसुर की घरहरि।
> औरौ शिष्य प्रशिष्य एक तें एक उजागर।
> विश्वमंगल आधार सर्वानंद दशधा के आगर॥

बहुत काल वपु धारि कै, प्रणत जनन कौं पार दियो ।
श्री रामानंद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो ॥

इस छप्पय में जहाँ विद्वानों ने कबीर, पीपा, रैदास और सेन का स्वामी रामानंद के शिष्य होने का ध्यान रखा वहां उन्होंने इस बात पर अधिक ध्यान नहीं दिया कि

बहुत काल बपु धारि कै, प्रणत जनन कौं पार दियो ।

अर्थात् स्वामी रामानंद ने बहुत लम्बी आयु पाई थी। यदि इस ओर विद्वानों ने ध्यान दिया होता ता १११ वर्ष की आयु असंभावित न मानी जाती। परंतु बहुत काल का अर्थ कहाँ तक खींचा जा सकता है यह विचारणीय है। क्या यह 'बहुत काल' १४८ वर्ष की आयु का अर्थ दे सकता है ? स्वामी रामानंद के सम्बंध में उनके समसामयिक मौलाना रशीदुद्दीन नामक एक फकीर काशी में हो गये हैं। उन्होंने 'तज़करतुल फ़ुक़रा', नामक एक ग्रंथ लिखा है जिसमें मुसलमान फकीरों की कथाएं हैं। इसमें स्वामी रामानंद की भी कुछ चर्चा है। उसका भाषा रूपांतर 'कल्याण' के संतांक से भागवत सम्प्रदाय में इस प्रकार उद्धृत किया गया है :

इसी पुरी (काशी) में पंचगंगा घाट पर एक प्रसिद्ध महात्मा रहते हैं। तेजःपुंज और पूर्ण योगेश्वर हैं। वैष्णवों के सर्वमान्य आचार्य हैं। सदाचार और ब्रह्मनिष्ठत्व के स्वरूप ही हैं। परमात्मतत्व-रहस्य के पूर्ण ज्ञाता हैं। सच्चे भगवत्प्रेमियों एवं ब्रह्मविदों के समाज में उत्कृष्ट प्रभाव रखते हैं। अपितु, धर्माधिकार में वे हिन्दुओं के धर्म-कर्म के सम्राट् हैं। केवल ब्रह्मवेला में अपनी पुनीत गुफा से गंगा-स्नान के लिए बाहर निकलते हैं। उन पवित्र आत्मा को स्वामी रामानंद कहते हैं। उनके शिष्यों की संख्या पाँच सौ से अधिक है। उस शिष्य समूह में द्वादश गुरु के विशेष कृपापात्र हैं—कबीर, पीपा और रैदास आदि। भागवतों के समुदाय का नाम "विरागी" है। जो लोक-परलोक की इच्छाओं का त्याग करता है, उसे ब्राह्मणों की भाषा में "विरागी" कहते हैं। कहते हैं कि इस संप्रदाय की प्रवर्तिका (ऋषि) जगज्जननी (श्री) सीता जी हैं। उन्होंने प्रथमतः अपने सविशेष सेवक पार्षद रूप (श्री) हनुमान (जी) को उपदेश किया और उन ऋषि (आचार्य) के द्वारा संसार में उस रहस्य (मंत्र) का प्रकाश हुआ। इस कारण इस

१. देखिए साध संग्रह अथवा नूतन भक्तमाल, स्वामी बाग आगरा, १९५० ई०, पृ० ४८

सम्प्रदाय का नाम श्री सम्प्रदाय है और उसके मुख्य मंत्र को "राम तारक" कहते हैं। इत्यादि[1]

इस वर्णन से स्वामी रामानंद की लम्बी आयु का कुछ अनुमान हो सकता है। वे अपनी पुनीत गुफा से केवल एक बार ब्रह्मवेला में निकलते थे और उनके शिष्यों की संख्या ५०० से भी अधिक थी। ऐसे तेजःपुंज, पूर्ण योगेश्वर, सदाचारी, ब्रह्मनिष्ठ महात्मा की अवस्था सवा सौ वर्ष की भी हो सकती है और डेढ़ सौ वर्ष की भी। कबीर, रैदास, पीपा आदि के आविर्भाव काल का विचार करते हुए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि स्वामी रामानंद सं० १४६१—६२ तक जीवित थे। यदि हम उनकी अवस्था १३५—१३६ वर्ष की मान लें तो हम सरलता से उनका समय सं० १३५६ से १४६१-६२ तक स्वीकार कर सकते हैं और सभी बातों का विचार करने पर यह समय असंगत भी नहीं जान पड़ता।

बहुत दिनों से यह बात भी प्रसिद्ध थी कि स्वामी रामानंद दक्षिण से आए थे। इसका आधार सम्भवतः कबीर पंथियों का यह दोहा है:

भक्ती द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानंद।
परगट कियो कबीर ने सप्तद्वीप नौखंड॥

फ़र्कुहर ने रामावत सम्प्रदाय की रामोपासना को तमिल प्रांत की रामोपासना का विकास अनुमान करते हुए माना है कि स्वामी रामानंद दक्षिण से रामोपासना लेकर आए थे और उत्तर भारत में उसका प्रचार किया।[2] इतना ही नहीं फ़र्कुहर ने यह भी अनुमान किया है कि रामावत

१— भागवत सम्प्रदाय, बलदेव उपाध्याय—ना० प्र० सभा काशी, सं० २०१०, पृ० २५५.

2. We have already seen that a sect which found release in Rama alone had been long in existence, and that the literature tends to indicate the south rather than the north as its home. If now we suppose that this Ramaite community lived in the Tamil country among the Sri-Vaishnavas and that Ramananda belonged to it, the puzzle is completely solved. Ramananda would

सम्प्रदाय के मान्य ग्रंथ 'अध्यात्म रामायण' और 'अगस्त्य-सुतीक्ष्ण-संवाद' भी वे दक्षिण से ही अपने साथ लाए थे।[१] परंतु फ़र्कुहर का यह अनुमान सत्य नहीं उतरा। स्वामी रामानंद ने दक्षिण से आकर उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार नहीं किया वरन् वे उत्तर भारत में ही प्रयाग के पुण्यसदन और सुशीला देवी नामक कान्यकुब्ज ब्राह्मण दम्पति की संतान थे और काशी में स्वामी राघवानंद के शिष्य थे। हाँ, फ़र्कुहर का यह अनुमान सम्भवतः सत्य है कि स्वामी रामानंद की रामोपासना का सम्बंध दक्षिण की रामोपासना से है, परंतु उसके लाने वाले स्वामी रामानंद नहीं उनके गुरु स्वामी राघवानंद थे। इसके प्रमाण में 'योग प्रवाह' के विद्वान् लेखक ने 'हरिभक्ति सिंधु वेला' (जिसके रचयिता अनंत स्वामी' बताये जाते हैं) से एक श्लोक इस प्रकार उद्धृत किया है :

वंदे श्रीराघवाचार्यं रामानुज कुलोद्भवम् ।
याम्यादुत्तरमागत्य राममंत्र प्रचारकम् ॥[२]

जिसके अनुसार यह निश्चित जान पड़ता है कि श्री रामानुजाचार्य के वंशज स्वामी राघवानंद ने ही दक्षिण भारत से उत्तर भारत की यात्रा की और उत्तर भारत में रामोपासना के प्रचार का श्रेय उन्हीं को मिलना चाहिए। भक्तमाल से भी इसकी पुष्टि हो जाती है जिसमें स्वामी राघवानंद के सम्बंध में लिखा है :

पत्रावलम्ब पृथिवी करी बसि काशी स्थाई ।

इस पर वार्तिक तिलक लिखते हुए रूपकला जी कहते हैं:

जो, पहिले, वैष्णवों के वृंद साथ लेके, भरतखंड की संपूर्ण पृथ्वी में विचर

---

then come to the north with his doctrine of salvation in Rama alone, and with his Rama-mantra. —Farquhar's An Outline of the Religious Literature of India, page 324.

1. Further, Ramananda would bring with him to the north the Adhyatma Ramayana and the Agastya-Sutikshna Samvada. वही पृ० ३२४

२. योग प्रवाह, प्रथम सं० २००३, पृ० २ फुटनोट

के, भगवत् विमुखों को जीत, अपने विजयपत्र के अवलम्ब में भूमि को करके, काशी जी में स्थिर विराजमान हुए।[१]

अस्तु, स्वामी रामानंद का दक्षिण से उत्तर आकर भक्ति-प्रचार की बात कबीर पंथियों का अनुमान मात्र है उसमें तथ्य कुछ भी नहीं है।

स्वामी रामानंद भक्ति सम्प्रदाय के परम आचार्य स्वामी रामानुज के श्री-वैष्णव सम्प्रदाय के माने जाते हैं, परंतु इधर रामानंदी सम्प्रदाय के विद्वान् इस मान्यता का प्रबल विरोध कर रहे हैं। उनका कहना है कि रामानंदी सम्प्रदाय एक स्वतंत्र सम्प्रदाय है और रामानुजाचार्य के श्री-वैष्णव सम्प्रदाय से उसका कोई सम्बंध नहीं। कारण यह है कि रामानंदी सम्प्रदाय का जप मंत्र स्वतंत्र है, छापा तिलक स्वतंत्र है और उनका प्रामाणिक ग्रंथ भी स्वतंत्र है। पहले स्वामी रामानंद का 'आनंद भाष्य' उपलब्ध नहीं था, परंतु अब उसके उपलब्ध हो जाने पर उनका साम्प्रदायिक ग्रंथ भी स्वतंत्र हो गया है। इसके विरुद्ध भक्तमाल का प्रमाण उपस्थित कर कुछ लोग रामानंद को रामानुज की ही शिष्य-परंपरा में मानते हैं। नाभादास का छप्पय इस प्रकार है :

श्रीरामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसर्‍यो।
"देवाचारज" द्वितीय महामहिमा "हरियानँद"।
तस्य "राघवानंद" भए भक्तन को मानँद।
पत्रावलम्ब पृथिवी करी बसि काशी स्थाई।
चारि बरन आश्रम सब ही को भक्ति दृढ़ाई॥
तिनके "रामानंद" प्रगट, विश्वमंगल जिन्ह वपु धर्‍यो।
श्रीरामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसर्‍यो॥

इसके अनुसार राघवानंद और रामानंद रामानुजाचार्य की ही भक्ति-परंपरा के आचार्य प्रमाणित होते हैं। 'श्री रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत है अनुसर्‍यो' पर वार्तिक तिलक लिखते हुए रूपकला जी कहते हैं :

अनंत श्री रामानुज स्वामी के सम्प्रदाय का अमृत रूपी प्रताप भूमंडल में शिष्य प्रशिष्यादि द्वारा जीवों के मरणादि दुःखों का नाश करता हुआ अतिशय फैल गया और फैलता ही जाता है।[२]

---

१ भक्तमाल सटीक—रूपकला जी की भक्तिसुधास्वाद तिलक सहित-तृतीय संस्करण १९५१ ई०, पृ० २८३. २ वही, पृ० २८२.

परंतु श्री भगवद्दास ब्रह्मचारी इसे स्वीकार नहीं करते। वे लिखते हैं :

इस छप्पय में हमारे आचार्य श्री रामानंद स्वामी जी का वर्णन है। इस छप्पय को श्री नाभाजी ने किस आशय से लिखा है यह विवादग्रस्त है। यदि उनका यह आशय रहा हो कि जिस पद्धति से श्री स्वामी रामानुजाचार्य जी ने धर्म प्रचार किया था उसी पद्धति से अर्थात् शास्त्रार्थ आदि करके और श्री आनंद भाष्य आदि ग्रंथों की रचना करके श्री रामानंदाचार्य जी ने भी धर्म प्रचार किया तो कोई क्षति नहीं है। परंतु यदि यह आशय रहा हो कि श्री रामानंद स्वामी जी ने श्री रामानुज स्वामी जी की पद्धति—सम्प्रदाय का अनुसरण किया अर्थात् उनके सम्प्रदाय और उनके (की) परंपरा के अनुयायी थे तो यह भारी भूल है[1]।

स्वामी रामानंद को रामानुजी सम्प्रदाय का मानने में फ़र्कुहर साहब को भी संदेह था।[2] रामानंदी सम्प्रदाय में जो गुरु-परंपरा मिलती हैं उनके अनुसार यह प्रमाणित नहीं होता कि स्वामी रामानंद रामानुजाचार्य की शिष्य-परंपरा में थे। भक्तमाल के वार्तिक तिलक में रूपकला जी ने 'श्री राममंत्र राज परंपरा' इस प्रकार दी है :

१. सर्वेश्वर श्री रामचंद्र जी
२. श्री जगज्जननी जानकी जी
३. ,, हनुमान जी
४. ,, ब्रह्मा जी
५. ,, वशिष्ठ जी
६. ,, पराशर जी
७. ,, व्यास जी
८. ,, शुकदेव जी
९. ,, पुरुषोत्तमाचार्य जी
१०. ,, गंगाधराचार्य जी
११. ,, सदाचार्य जी
१२. श्री रामेश्वराचार्य जी
१३. ,, द्वारानंद जी
१४. ,, देवानंद जी
१५. ,, श्यामानंद जी
१६. ,, श्रुतानंद जी
१७. ,, चिदानंद जी
१८. ,, पूर्णानंद जी
१९. ,, श्रियानंद जी
२०. ,, हर्यानंद जो
२१. ,, राघवानंद जी
२२. ,, स्वामी रामानंदजी

---

१. श्री मद्रामानंद दिग्विजयः, भूमिका पृ० १८.

2. It has been frequently assumed that Ramananda taught the Vishishtadvaita system of Ramanuja. This is one of the many points with regard to the leader on which no direct evidence is avai-

इसी प्रकार मधुराचार्य श्री रामप्रपन्न रचित 'सुंदरमणि संदर्भ' के टीकाकार पुरुषोत्तमशरण ने जो गुरु-परंपरा दी है वह भी प्रायः ऐसी ही है :

भगवान राम—जगज्जननी जानकी—हनुमान—ब्रह्मा जी—वशिष्ठ जी—पराशर जी—वेदव्यास जी—शुकदेव जी—पुरुषोत्तमाचार्य जी—गंगाधराचार्य जी—यती रामेश्वराचार्य जी—श्री द्वारानंद जी—देवानंद जी—श्यामानंद जी—श्रुतानंद जी—चिदानंद जी—पूर्णानंद जी—श्रियानंद जी—हरियानंद—राघवानंद—रामानंद, अनंतानंद—कृष्णदास पयहारी।

इस गुरु-परंपरा में रामानुज का नाम कहीं नहीं आता यद्यपि नाभादास जी उल्लिखित देवानंद, हरियानंद और राघवानंद का नाम अवश्य है। श्री-सम्प्रदाय की गुरु-परंपरा इस प्रकार मानी गई है।

१. श्री नारायण जी
२. ,, लक्ष्मी जी
३. ,, विश्वक्सेन जी
४. ,, शठकोप जी
५. ,, बोपदेव जी
६. ,, नाथ मुनि जी
७. ,, पुंडरीकाक्ष जी
८. ,, राममिश्र परांकुश जी
९. ,, यामुनाचार्य जी
१०. ,, पूर्णाचार्य जी
११. ,, स्वामी रामानुजाचार्य जी

यह परंपरा रामानंदी संप्रदाय की गुरु-परंपरा से नितांत भिन्न है। श्री-सम्प्रदाय के आदि गुरु श्री नारायण जी हैं और उनसे श्री लक्ष्मी जी ने द्वादशाक्षर

---

lable, but the indirect evidence which does exist scarcely points to that conclusion. One of the characteristics of the whole movement that springs from him is a constant use of advaita phrases, a clinging to advaita concepts while holding hard by the personality of Rama.—An outline to the Religious literature of India by J. N. Farquhar, page 326.

मंत्र प्राप्त किया। रामानंदी सम्प्रदाय के आदि गुरु भगवान राम हैं जिनसे जानकी जी ने तारक मंत्र प्राप्त किया। यह सत्य है कि सिद्धांत की दृष्टि से श्री-सम्प्रदाय और रामानंदी सम्प्रदाय में बहुत कम अंतर है और जप मंत्र तथा छापा-तिलक में भी अंतर बहुत कम है। संभव है कि स्वामी रामानंद ने श्री-सम्प्रदाय से ही प्रेरणा ग्रहण की हो। स्वामी रामानंद की हिंदी रचनाओं तथा उनके गुरु राघवानंद की हिंदी रचना 'सिद्धांत पंचमात्रा' में जो सिद्धांत प्रतिपादित हुए हैं उनमें स्पष्ट भक्ति के साथ योग का सम्मिश्रण हो गया है जो श्री-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से पृथक् है। ऐसी स्थिति में रामानंदी संप्रदाय को स्वतंत्र संप्रदाय भी माना जा सकता है।

स्वतंत्र संप्रदाय होते हुए भी रामानंदी संप्रदाय जो श्री-वैष्णव संप्रदाय से सम्बद्ध है उसका एक कारण जान पड़ता है। वैष्णव भक्ति के प्राचीन चार संप्रदाय प्रसिद्ध हैं—स्वामी रामानुजाचार्य का श्री संप्रदाय, मध्वाचार्य का ब्रह्म संप्रदाय, निम्बार्क का सनकादिक सम्प्रदाय और विष्णुस्वामी का रुद्र संप्रदाय। परवर्ती वैष्णव संप्रदायों ने अपना सम्बंध इन चारों में से किसी न किसी एक से अवश्य जोड़ लिया था। अस्तु, चैतन्य महाप्रभु के गौड़ीय वैष्णव अपने को मध्व संप्रदाय की परंपरा में तथा वल्लभ संप्रदाय वाले पुष्टिमार्गी अपने को विष्णुस्वामी की परम्परा में मानते हैं। इसी प्रकार रामानंदी अपने को रामानुजाचार्य के श्री-संप्रदाय से संबद्ध मानते हैं। इस प्रकार चैतन्य संप्रदाय, वल्लभ संप्रदाय और रामानंद संप्रदाय की स्वतंत्र सत्ता मानते हुए भी इन्हें प्राचीन मध्व, विष्णुस्वामी और रामानुजाचार्य की परम्परा से संबद्ध माना जाता है। अस्तु, रामानंदी संप्रदाय की स्वतंत्र सत्ता मानते हुए भी इसे श्री-वैष्णव संप्रदाय की परम्परा में माना जा सकता है।

जनश्रुतियों में इस प्रकार की बातें कही जाती हैं कि स्वामी रामानंद वास्तव में रामानुजी सम्प्रदाय के श्री-वैष्णव थे और उनके गुरु राघवानंद केवल रामानुजी सम्प्रदाय के श्री-वैष्णव ही नहीं रामानुज कुलोद्भव भी थे। स्वामी रामानंद द्वारा पृथक् सम्प्रदाय चलाये जाने का कारण यह कहा जाता है कि एक बार वे भ्रमण को निकले और भ्रमण के पश्चात् जब वे पुनः श्री गुरु दर्शनार्थ गए तो आचारी गुरुभाइयों ने स्वामी जी का आचार-विचार के सम्बंध में अधिक आग्रह न देख गुरु महाराज से इनको दंड देने की बात कही। परंतु गुरुजी ने उन्हें दंड न दे पृथक् सम्प्रदाय प्रचलित करने की

आज्ञा दी। दक्षिण भारत के वैष्णवों में आचार-विचार की जितनी कड़ाई थी उत्तर भारत में उसका पालन सम्भव नहीं था, कारण उत्तर भारत में मुसलमानों का शासन था और गोरखपंथी सिद्धों और नाथ साधुओं का प्रभाव भी कुछ कम नहीं था। सम्भव है युग की इस प्रवृत्ति के अनुरूप स्वामी रामानंद ने वैष्णवों के आचार-विचारों में कुछ उदारता ला दी हो, और इसी कारण रामानुजी सम्प्रदाय के कट्टर वैष्णवों से उन्हें पृथक् सम्प्रदाय बनाने की आवश्यकता जान पड़ी हो। इस जनश्रुति पर विश्वास किया जा सकता है, परंतु एक कठिनाई यह अवश्य उपस्थित होती है कि रामानदी सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा रामानुजी सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा से नितांत भिन्न क्यों है।

मध्य युग के सगुण भक्तों में जहाँ विष्णु भगवान के अवतारों की भक्ति और उपासना का प्रचार था वहाँ धीरे धीरे भक्तों के भी अवतार लेने की बात प्रसिद्ध हो चली थी और मध्य युग के प्रायः सभी भक्त प्राचीन भक्तों और महात्माओं के अवतार माने जाने लगे थे। गोस्वामी तुलसीदास महामुनि बाल्मीकि के, सूरसागर के कर्ता सूरदास कृष्ण-सखा उद्धव के, मीराबाई राधा की और स्वामी हरिदास ललिता सखी के अवतार माने जाने लगे थे। इन चेतन भक्तों का अवतार तो माना ही जाता था, जड़ मुरली का भी अवतार लेना प्रसिद्ध हो गया था। स्वामी हित हरिवंश भगवान की वंशी के अवतार माने गए थे। ऐसी स्थिति में स्वामी रामानंद जैसे महात्मा और आचार्य को भी अवतारी माना जाना अनिवार्य था। वैश्वानर संहिता ने 'रामानंदः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले' लिखकर स्वामी रामानंद को स्वयं भगवान् राम का अवतार माना है और रामानंदी संप्रदाय में इसी की मान्यता है। इतना ही नहीं स्वामी रामानंद के प्रसिद्ध द्वादश भक्तों को भी अवतारी माना गया है। संप्रदाय की मान्यता के अनुसार अनंतानंद ब्रह्मा के, सुखानंद शंकरजी के, सुरसुरानंद नारद के, नरहरियानंद सनत्कुमार के, पीपा मनु के, कबीर प्रह्लाद के, भावानंद जनक के, सेन नाई भीष्म पितामह के, धना जाट राजा बलि के, रैदास यमराज के, शुकदेव के गालवानंद और योगानंद कपिल मुनि के अवतार माने गए हैं।

परंतु स्वामी रामानंद के अवतारी रूप के संबंध में कहीं कहीं कुछ भिन्न उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। कुछ भक्त स्वामी रामानंद को कपिलदेव भगवान् के अवतार, गालवाश्रम के समीप गौड़ ब्राह्मण

के पुत्र मानते हैं और भविष्य पुराण में उन्हें सूर्य भगवान का अवतार और कान्यकुब्ज ब्राह्मण देवल मुनि का पुत्र लिखा है। परंतु इन उल्लेखों को अधिक मान्यता नहीं मिली। नाभादास ने अपने भक्तमाल में स्वामी रामानंद को अवतार नहीं माना था, परंतु उनके प्रसिद्ध छप्पय में ही इस अवतार भावना के बीज थे जब कि उन्होंने लिखा था :

श्री रामानंद रघुनाथ ज्यों द्वितीय सेतु जग तरन कियो।

यहाँ रामानंद की उपमा रघुनाथ से दी गई है, परंतु कालांतर में यही उपमा अवतारी रूप में बदल गई। मीरा के संबंध में भी ठीक यही बात हुई। नाभादास ने मीरा की उपमा गोपी से दी थी और कालांतर में मीरा गोपी की अवतार प्रसिद्ध हो गईं। इस प्रकार उपमाओं और रूपकों ने भी अवतार बनाने में बड़ी सहायता की है।

अवतार की भावना को भक्त विशेष के नाम से भी प्रेरणा मिली है। नरसी मेहता का नाम नरसिंह था, अस्तु, उन्हें नर रूप सिंह का अवतार माना गया है। अवतार लेने योग्य सिंह को ढूँढ़ने में भी अधिक कठिनाई नहीं हुई। पीपा के उपदेश से जिस सिंह ने वैष्णव बन हिंसा त्याग राम नाम जपना प्रारंभ कर दिया था उसी ने मर कर नरसी मेहता के रूप में गुजरात में अवतार लिया। नाम के साम्य के कारण ही शंकराचार्य भगवान शंकर के और श्री रामानुजाचार्य रामानुज लक्ष्मण के अवतार माने जाते हैं और संभवतः नाम के साम्य से ही स्वामी रामानंद भगवान राम के अवतार प्रसिद्ध हुए।

कई स्थलों पर इस प्रकार के भी उल्लेख मिलते हैं कि स्वामी राघवानंद से दीक्षा लेने के पूर्व स्वामी रामानंद का नाम रामदत्त था और सन्यास लेने के उपरांत उनका नाम रामानंद रखा गया। राघवा-नंद के शिष्य होने से पहले कहा जाता है कि रामानंद का आयुष्य केवल १६ वर्ष का लिखा था और स्वामी राघवानंद ने अपने योग बल से उनकी जीवन-रक्षा की।[1] इस प्रकार राघवानंद के शिष्य होने से पूर्व

---

१ भक्तमाल की टीका में रूपकला जी ने पृ० २८९—९० पर लिखा है कि स्वामी रामानंद आठ वर्ष की अवस्था में विद्या आरंभ कर चार वर्ष में ही पंडित हो गए और बारह वर्ष की अवस्था में काशी आए और किसी दंडी संन्यासी के शिष्य होकर स्मार्त रीति से अपने धर्म-कर्म में प्रवृत्त हुए। प्रथम आपका नाम रामदत्त था। एक दिन उन्होंने स्वामी राघवानंद जी के पास जा

स्वामी रामानंद के संबंध में अनेक कथाएँ मिलती हैं। 'वैष्णव-धर्म-रत्नाकर' में लिखा है कि स्वामी रामानंद का पूर्व नाम राम भारती था और वे गोसाईं थे। पीछे जब राघवानंद के शिष्य हुए तो रामानंद नाम पड़ा। 'रामानंद-धर्म-प्रकाश' नामक एक गुजराती पुस्तक में लिखा है कि स्वामी रामानंद जन्म-रहित साधु वेश में पैदा हुए। उनके पिता पुण्यसदन नंद के अवतार और माता सुशीला देवी यशोदा की अवतार थीं। द्वापर में भगवान के वियोग से नंद और यशोदा को परम दुःख हुआ, तब भगवान् ने वचन दिया कि कलियुग में आप लोग ब्राह्मण होंगे और मैं आपके घर साधु वेश में अवतार लूँगा।[1] उसी पुस्तक में यह भी लिखा है कि स्वामी जी अपनी माता को आत्मिक ज्ञान देकर स्वयं काशी में एक शिवमार्गी गिरिजाशंकर के पास गये और उनसे साधु संस्कार लेकर 'राम भारती' के नाम से प्रसिद्ध हुए।[2] इन सब उल्लेखों से यही जान पड़ता है कि राघवानंद के शिष्य होने से पूर्व वे शैव थे, और शंकराचार्य के अद्वैतवादी सिद्धांत के संपर्क में आ चुके थे। रामानंदी संप्रदाय के लोग इन सब उल्लेखों पर विश्वास नहीं करते, उनका कहना है कि स्वामी रामानंद का राघवानंद जी के शिष्य

प्रणाम किया। स्वामी जी कृपादृष्टि से देख भावी वार्ता को जान कहने लगे कि तुम्हारे शरीर का तो आयुष भी पूर्ण हो चुका पर अभी तक तुम हरि शरणागत नहीं हुए। यह सुन आपने अपने दंडी गुरु से सब बात कही। विज्ञ दंडी स्वामी ने उस बात को सत्य विचार कर कहा कि बात तो सत्य है परंतु इसका उपाय मेरे किये न हो सकेगा तुम उन्हीं महानुभाव की शरण में जाकर शरीर की रक्षा करो। ऐसा हितोपदेश पा के आपने स्वामी राघवानंद को साष्टांग प्रणाम कर विनय किया कि 'हे प्रभो यह शरीर और आत्मा आपको अर्पण है इसकी दोनों लोक में रक्षा कीजिए।' तब स्वामी जी ने श्री राम षडक्षर मंत्र आदि पंचसंस्कार कर रामानंद नाम दिया और प्राणायाम आदिक रीति बता उतारने की युक्ति भी सिखा कर समाधि में स्थित कर दिया। आयुष समाप्त हुआ जान काल आया और स्वामी रामानंद को समाधिस्थ देख चला गया। कुछ काल पश्चात् आप समाधि से उठ श्री मंत्र जाप और गुरु सेवा में तत्पर हुए।

१. श्री मंद्रामानंद दिग्विजयः, भूमिका पृ० २३.
२. वही पृ० २३।

होने से पूर्व भी रामानंद ही नाम था क्योंकि उनके अवतार लेने की सूचना रामानंद नाम से ही हुई थी। अस्तु, उनका अवतार भी उसी नाम से हुआ होगा। परंतु यदि हम अवतार की बात छोड़ दें तो यह संभव जान पड़ता है कि वे राघवानंद जी के शिष्य होने से पूर्व उत्तर भारत में व्याप्त शैवधर्म के संपर्क में आए हों।

स्वामी रामानंद के संबंध में जो बात सबसे अधिक लोकप्रचलित है वह है उनका भक्तों में जाति-पाँति का बंधन शिथिल करना।

'जाति-पाँति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।'

यह अर्द्धाली भी, कहा जाता है; उन्हीं की रचना है। इसके अनुसार हरि को भजनेवाला चाहे जिस जाति का हो वह भगवान् का प्रिय हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने इसी कारण अपने भगवान राम से यह वचन कहलवाया है कि :

भगतिवंत अति नीचहु प्रानी। मोहिं प्रान सम अस मम बानी।

यह उदारता रामानंद स्वामी की महानता का लोक-प्रचलित प्रमाण है। इसी कारण उन्होंने कबीर जुलाहा, रैदास चमार, सेना नाई और धना जाट को भी अपना शिष्य बनाया। कहा तो यहाँ तक जाता है कि मुसलमानों द्वारा बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन करके मुसमलान हुए लोगों को भी उन्होंने अपने 'राम तारक मंत्र' से पुनः हिन्दू बनाया था। भविष्य पुराण के तृतीय पर्व, चतुर्थ खंड के अध्याय २१ में लिखा है :

म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानंदप्रभावतः।
संयोगिनश्च ते ज्ञेया अयोध्यायां बभूविरे।
कंठे च तुलसीमाला जिह्वा राममयी कृता।
भावे त्रिशूलचिह्नं चश्वेतरक्तं तदाऽभवद्।[1]

अर्थात् अयोध्यापुरी में बादशाह सिंकदर लोदी ने अपने एक यंत्र द्वारा जिन जिन हिंदुओं को म्लेच्छ बना लिया था उन्हें स्वामी रामानंद के शिष्यों ने स्वामी जी के प्रभाव से वैष्णव बना लिया। उनके गले में तुलसी की माला, जिह्वा पर राम नाम, भाल में श्वेत रक्त वर्ण का त्रिशूल चिह्न अपने आप हो गया। इस प्रकार जो मुसलमान हिंदू हुए वे संयोगी नामक जाति के कहलाए।

---

१. वही पृ० १४ से उद्धृत।

ग

स्वामी रामानंद सदाचार और उदारता की प्रतिमूर्ति थे। उत्तर भारत में वैष्णवता प्रचार के वे प्रधान आचार्य थे। उनके पाँच सौ से भी अधिक शिष्य सारे उत्तर भारत में फैले थे और घर घर राम मंत्र का प्रचार कर रहे थे। अपनी उदारता के कारण ही उन्होंने देवभाषा के प्रकांड पंडित होते हुए भी लोक भाषा में अपनी शिक्षा दी।

—श्रीकृष्ण लाल

रामानंद की हिंदी रचनाएँ

रामानंद की हिंदी रचनाएँ

राम रक्षा

ॐ सत्य अनादि पुरस सत्य सत्य गुरू
संध्या तारणी सर्व दुःख विदारणी।
संध्या उच्चरे विघ्न टरे।
पिंड प्राण की रक्षा श्री नाथ निरंजन करे ॥ १ ॥
ज्ञान धूप मन पुष्प इंद्रिय पंच हुताशनम्।
क्षमा जाप समाधि पूजा नमो देव निरंजनम् ॥ २ ॥
ॐ अखंड मंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥ ३ ॥
परम गुरवे नमः परात्पर गुरवे नमः
परमात्म गुरवे नमः, आत्मा गुरवे नमः
आदि गुरदेव अनादि गुरवे नमः
अनंत गुरदेव के चरणारविंद को नमो नमस्कारम् ॥ ४ ॥
हरत सकल संताप दुःष दालिद्र रोग पीड़ा कलह कल्पनां
सकल विघ्न खंड खंड तस्मै श्रीराम रक्षा निराकार वाणी
अनभै तत्त निर्भै मुक्ति जानी ॥ ५ ॥
बाँधिया मूल देखिया अस्थूल,
गगन गरजंत धुनि ध्यान लागा।
त्रिगुण रहित सील संतोष मैं,
श्रीरामरक्षा लिये ओंकार जागा ॥६॥
पंच तत्त पंचभूत पचीस प्रकृति,
पंच भू आत्मा पंच वाई।
सम दिष्टि सम घर आंणी प्राण अपान
उदान व्यान मिलि अनहद सब्द की षबर पाई ॥ ७ ॥

उलटिया सूर गगन भेदन किया,
नव ग्रह डंक छेदन किया
पोषिया चंद जहाँ कला सारी
अगनि परगट भई जुरा वेदन जरी
डंकनी संकनी घेरि मारी ॥ ८ ॥
धरनि अकास बिचि पंथ चलता किया
अगम निगम महारस अमृत पिया
भूत प्रेत दैत्य दानव संघारा किया
वज्र की कोठरी वज्र का डंड ले,
वज्र का खड्ग ले काल मारा ॥ ९ ॥
गरुड़ पंषी उडया नाग नागनि डस्या,
विष की लहरिसूं निद्रा न झांपै।
पिंड निरमल हुआ पिंजरे पड़ो सुआ,
रोग पीड़ा विथा नहिं देह व्यापै ॥ १० ॥
रूम रूम ररंकार उचरंत वानी
श्रवण सुनता रहै समदृष्टि मुष्टि मेला।
झिलमिला ज्योति रुणकार झलकता रहै
नाद बिंद मिल भया रँग रेला ॥ ११ ॥
सुंनि कै नेहरौ सुंनि सीझत रहै,
आपुसूं आपु मिलि आपु जाग्या।
सरीर सों सरीर मिलि सरीर निरषता रहै,
जीव सौं जीव मिलि ब्रह्म जाग्या ॥ १२ ॥
नैन सौं नैन मिलि नैन निरषत रहै,
मुष सों मुष मिलि बोल बोल्या।
स्रवन सो स्रवन मिलि नाद सीझत रहै,
सब्द सौं सब्द मिलि सब्द षोल्या ॥ १३ ॥
निरति सों निरति मिलि निरति लागी रहै
सुरति सूं सुरति मिलि सुरति आवै।
ध्यांन सों ध्यांन मिलि ध्यांन सूझत रहै,
रंग सों रंग मिलि रंग पावै ॥ १४ ॥
ग्यांन सों ग्यांन मिलि ध्यांन सों ध्यांन मिलि,
जाप अजपा जपै सोइ दम लाइ लेवै।

चित्त सों चित्त मिलि चित्त चेतन भया,
उनमुनी दिष्टि सों भाव देषै ॥ १५ ॥

द्वार सों द्वार मिलि सीस सों सीस मिलि,
जीव सों जीव मिलि देह विदेह मिल भेद भेद्या ॥
मिट गया घोर अंध्यार तिहुँ लोक मैं,
स्वेत फटिक मणि हीर वेध्या ॥१६॥
उघरंत नैन उचरंत बैन चंद अरु सूर दोउ राषिया थीरं ।
हणवंत हुंकार मचती रहै पकड़िया सोषिया वावन वीरं ॥ १७ ॥
गंग उलटी चलै भानु पच्छिम मिलै, निकसिया विंब परकास कीया ।
आत्मा माहि दीदार दरसता रहै यूं अजरावर होय आपु जीया॥१८॥
कुणीकुणी रुणरुणी मुणमुणी नाद नादं, सुषमना काछ के साज साजा ।
चाचरी भूचरी षेचरी अगोचरी उन्मुनी पांचमुद्रा साधते सिद्ध राजा ॥१९॥
डरे डूंगरे जले और थले बाट औ घाट औघट, निरंजन निराकार रक्षा करै ।
बाघ बाघिन का करूं मुष काला चौसठ योगिनी काटि कुटका करूं ।
षेचरा भूचरा षेत्रपाला नौ ग्रह दूत पाषंड टारूं ॥ २० ॥
अखिल ब्रह्मांड तिहुं लोक मैं दोहाई फिरवो करै ।
अखिल पुरुष निरंजन निराकार की चक्र फिरै वाढ वाढ्या ॥
दृष्टि अरु मुष्टि छल छिद्र मैं वीर वेताल नवग्रह अवधू होत पाषंड वाधा ॥ २१ ॥*

---

*नागरीप्रचारिणी सभा के खोज विवरणों में वर्णित एक प्रति में अंतिम अंश यों दिया है—

गर्जत गवन वाजंत वेयण शंख सब्द ले त्रिकुटी सारं । दास रामानंद निजु तत्व विचारं । निजु तत्त्व तें होते ब्रह्मज्ञानी । श्रीराम रक्षादीय उधरे प्राणी । राजद्वारे पथे घोरे संग्रामे शत्रु संकटे । जाय लागा धीरं । श्रीरामचंद्र उचरेते लक्ष्मणजी सुनते जानकी सुनते । हनुमान सुनते पापं न लिपंते । पुन्य ना हरंते । संध्या काले प्रातः काले जे नरा पठते सुनते मोक्ष मुक्त फल पावते । इति श्री राम रक्षा रामानंद की ॥—खोज रिपोर्ट, सन १९०२

पंथ में घोर में सोर में चोर में देस परदेस में राज के तेज में।
अग्नि के झाल में साँकड़े पैसता बैठते ऊठते श्री राम रक्षा करैं॥
जागतां सोवतां खेलतां मालतां संत के सीस पै हाथ धारे रहैं॥२२॥

चक्र लीयां राम आप रक्षा करैं गुप्त का जाप ले गुप्त सेवै।
चंद सूर दोइ एक घर रहेवो करैं जीतिया संग्राम देवाधिदेवा॥२३॥

फेरि सीधा किया उलटिया अमृत पिया विषवाद सब दूरि भागा।
कमल दल कमल जोति ज्वाला जगे भ्रमर गुंजार आकास जागा॥२४॥

ग्यांन लीला

मूरष तन धर कहा कमायौ। रांम भजन विन जनम गमायौ॥
रांम भगति गत जांणी नाहीं। भंदू भूलौ धंधा माहीं॥१॥
मेरी मेरी करतौ फिरियौ। हरि सुमिरण तो कबू न करियौ॥
नारी सेती नेह लगायौ। कबहूं हिरदै रांम नहिं आयौ॥२॥
सुष माया सूं षरो पियारो। कबहुँ न सिवरयौ सिरजनहारो॥
स्वारथ माहिं चहूं दिसि धायौ। गोविंद को गुंण कबहुँ न गायौ॥३॥
ऐसे ऐसे करत बुहारा। आये साहिब के हलकारा॥
वंधे काल कीयौ चौरंगा। सुत बेटी नार कोइ नहि संगा॥४॥
जो तुम करम कीया है भारी। सो अब संग सु चलै तुमारी॥
जम आगै लै ठाढो कीनो। धरम राय बूझण कूं लीनो॥५॥
कीधा कौन कीया तैं करमा। सिरजन हार न भज्यौ निसरमा॥
जिण पांणीं सू पैदा कीयौ। नर सौ रूप तोहि कूं दीयौ॥६॥
जो तूं विसरयौ मूरष अंधा। तो तूं आयौ जँम पै बंधा॥७॥
हरि की कथा सुनी नहीं कानां। तो तू नांहीं जम सूं छांनां॥
साध कै संगत मैं कछू न रहियौ। मुष सूं रांम कछू नहिं कहियौ॥८॥
हरि की भगति करौ नर नारी। धरम राय यूं कहै विचारी॥
मोकूं दोस न दीजै कोई। जिसा करम भुगताऊँ सोई॥९॥
पाप पुंन कूं न्यारा छांणूं। जो तुम करम करो सो जांणूं॥
तुमरा करम तुमै भुगताऊँ। आद पुरुस की आग्यां पाऊँ॥१०॥

साहिब की अग्यां है मोकूं। महा कसौटी देहूं तोकूं ॥
घड़ी घड़ी का लेषा लेहूं। करमादिक तेरा भर देहूं ॥११॥
है हरि विनां कूंण रषवारो। चित दे सिवरौ सिरजणहारो ॥
संकट मैं हरि वेह उवारी। निस दिन सिमरौ नांम मुरारी ॥१२॥
नांम निकेवल सबते न्यारा। रटत अघट घट होय उजारा ॥
रामानँद यूं कहै समुझाई। हरि सिमर्‌यौ जम लोक न जाई ॥१३॥

पद

हरि विन जन्म वृथा षोयो रे।
कहा भयो अति मान बड़ाई, धन मद अंध मति सोयो रे।
अति उतंग तरु देषि सुहायो, सैवल कुसुम सूवा सेयो रे॥
सोई फल पुत्र कलत्र विषै सुष, अंति सीस धुनि धुनि रोयौ रे।
सुमिरन भजन साध की संगति, अंतरि मन मैल न धोयौ रे॥
रामानंद रतन जम त्रासैं श्रीपति पद काहे न जोयौ रे॥१॥

आरती

आरति कीजै हनुमान लला की। दुष्ट दलन रघुनाथ कला की ॥
जाके वल गरजे महि काँपे। रोग सोग जाके सिमाँ न चाँपे ॥
अंजनी-सुत महावल-दायक। साधु संत पर सदा सहायक ॥
बाँएँ भुजा सव असुर सँघारी। दहिन भुजा सब संत उवारी ॥
लछिमन धरनि में मूछि पर्‌यो। पैठि पताल जमकातर तोर्‌यौ ॥
आनि सजीवन प्रान उवार्‌यो। मही सवन कै भुजा उपार्‌यो ॥
गाढ़ परे कपि सुमिरौं तोहीं। होहु दयाल देहु जस मोहीं ॥
लंका कोट समुंदर खाई। जात पवन सुत बार न लाई ॥
लंक प्रजारि असुर सब मार्‌यौ। राजा रामजि के काज सँवार्‌यौ ॥
घंटा ताल झालरी बाजै। जग मग जोति अवधपुर छाजै ॥
जो हनुमानजि की आरति गावै। वसि बैकुंठ परम पद पावै ॥
लंक विधंस कियो रघुराई। रामानंद (स्वामी) आरती गाई ॥
सुर नर मुनि सब करही आरती। जै जै जै हनुमान लाल की ॥२॥

तातैं ना कछू रे संसारा । मेरै रांम को नांव अधारा ॥टेक॥
गुड़ चींटा गुड़ षाई । गुड़ माहिं रही लपटाई ॥
गुड रती एक मीठा होई । पाछै दुष पावै सोई ॥
सुपनांतर राजा होइए । नांनां विधि के सुष लहिए ॥
ऐसा सुष क्यों सुष होई । जाग्या थैं झूठा सोई ॥
मैं मेरी ग्यांन नसावै । तातैं आत्म समाधि न पावै ॥
रामानँद गुर गमि गावै । तातै भिन भिन समझावै ॥ ३ ॥

सहजैं सहजैं सब गुन जाइला । भगवंत भगता एक थिर थांइला ॥
मुक्ति भईला जाप जपीला । यों सेवग स्वामी संग रहीला ॥
अमृत सुधानिधि अंत न पाइला । पीवत प्रान न कदे अघाइला ॥
रामानँद मिलि संग रहैला । जब लग रस तब लग पीवैला ॥ ४ ॥

लाँबी को अंग,

कहां जाइसे हो घरि लागो रंग । मेरो चित न चलै मन भयो अपंग ॥
जहाँ जाइये तहाँ जल पषांन । पूरि रहे हरि सब समांन ॥
वेद सुमृत सब मेले जोइ । उहां जाइए हरि इहां न होइ ॥
एक बार मन भयौ उमंग । घसि चोवा चंदन चरि अंग ॥
पूजन चाली ठांइ ठांइ । सो ब्रह्म बतायौ गुरु आप माइं ॥
सतगुर मैं बलिहारी तोर । सकल विकल भ्रम जारे मोर ॥
'रामानंद' रमैं एक ब्रह्म । गुर कै एक सबदि काटे कोटि क्रम्म ॥ ५ ॥

सहज सुन्न मैं चिति वसंत । अबहि असहि जिनि जाय अंत ॥
न तहां इंच्छ्या ओं अंकार । न तहां नाभि न नालि तार ॥
न तहां ब्रह्मा स्यौ विसन । न तहां चौबीसू वप वरन ॥
न तहां दीसै माया मंड । 'रामानँद' स्वामी रमैं अषंड ॥ ६ ॥

योग चिंतामणि

ॐ अकट बिकट रे भाई । काया [गढ़] चढ़ा न जाई ॥
पछिम [दि] शा की घाटी । फौज खड़ी है ठाढी ॥ १ ॥
जहां नाद - विंदु की हाथी । सतगुर ले चल साथी ॥
सतगुर साह विराजै । नौबत नाम की बाजै ॥ २ ॥

जहाँ अष्ट दल कमल फूला। हंस सरोवर में भूला ॥
जहाँ राग रंग होय षासे। जहाँ है हंस के वासे ॥ ३ ॥

शव्द को सीखले शव्द को बूझले शव्द से शव्द पहिचान भाई।
शव्द तो हृदय वसे शव्द तो नयनों वसे शव्द की महिमा चार वेद गाई ॥४॥
शव्द तो आकाश वसे शव्द तो पाताल वसे शव्द तो पिंड ब्रह्मांड छाई।
आप में देख ले सकल में पेषले आप मध्ये विचार भाई ॥५॥
कह रामानंद सतगुर दया करि मिलिया सत्य का शव्द सुन भाई ॥
फकीरी अदल बादसाही ॥६॥

संतो वंदगी दीदार। सहज उतरो सागर पार ॥
सोहं शव्दै सों कर प्रीत। अनुभव अषंड घर जीत ॥७॥
अव उलटा चढ़ना दूर। जहाँ नगर वसता है पूर ॥
तन कर फिकिर कर भाई। जिसमें राम रोसनाई ॥८॥
सुरत नगर का कर सयल। जिसमें आत्मा का महल।
इंद्रिया सिंधु मूल मिलियां। जिस पर रषना बांवा पांव ॥९॥
दहिने को मध्य पर धरनां। आसन अमर घर करनां ॥
द्वादश पव [न] भर पीता। उलट घर शीश को चढ़नां ॥१०॥
दों नैना कर वांन। भौंह उलटा कस कवांन ॥
त्रिवेनी कर असनांन। तेरा मेट जाय आवा जांन ॥११॥
वाजा गैव का वाजे। वोली सिंधु में राजे ॥
लगी है गैव के वाजा ॥१२॥
संतो वंदे सवदा पार। दोहे सरवर दोहे पहार ॥
जहाँ परे कुदरथ को भार। लगी है नौ लष हार ॥१३॥
शंकला करए मूल। जडिया कटे तो देषना मत फूल।
माया ब्रह्म की फांसी। परी है प्रेम की फांसी ॥१४॥
वाजन विना तम तूर। सहजे ऊगे पच्छि [म] सूर।
भवर है सुगंध का प्यासा। किया है कमल का वासा ॥१५॥
इंद्रिया आराम का दीन्हा जिसका चोलना है लाल।
उनमनी भरे जदद[1] मसाल ॥१६॥

---

१ जदद = जदीद, नवीन।

अमहोघं स्या मायी। गगन मैं बादला छाई।
अमृत निर्भै [र] लाई। उलट दरियाव निर्भरिया ॥१७॥
यहि विधि चढ़ना चौसठ सीढ़िया।
हंसा आन बैठा तीरे। निश दिन चुगै मोहवत हीरे ॥१८॥
राम नैनों मैं रम रहे मरम न जानै कोई।
जिसके मिलिया सतगुरु ताके पूरा मुहरम[1] हो [ई] ॥१९॥
कहैं रामानंद बचा अगम पंथ का मेला।
झंडा रोपा गैयब का हो सरोवर के तीर ॥२०॥
साधू खेलै नटकला दृष्टि बंद का षेल।
जोति अषंडी झिलमिली विनु बाती विनु तेल ॥२१॥
साधू परषै शब्द को सुरति निरति का षेल ॥२२॥
मोती की झालर लगी हीरों का परकास।
चद्र सूर्य का गम नहीं जहां ज दर्शन पावै दास ॥२३॥

ग्यांन तिलक

ॐ आदि जुगादि पवन और पानी
ब्रह्मा विष्णु महादेव जानी।
पाँच तत्त का करो निसेफ।
उलटि दिष्टि आपै मैं देख ॥१॥
आप तेज धरणी आकासा।
सकल पसारा पौन की साथा॥
पौनै आव पौनै जाय।

पौन नाद धुनि गरजत रहै।
सूरा होय सो खड की लहै ॥२॥
खड़की लागि पार गहिया।
ररंकार का चरन गहिया॥
जहाँ राति द्यौस नहिं सूर।
तहां उजियारा है भरपूर ॥३॥

---

[1] मुहरम = महरूम, सब सांसारिक सुख भोग की वस्तुओं से वंचित।

धरती धीरन का मन थीर।
महा देव नहिं ब्रह्मा वीर॥
ज्योति स्वरूप किरपा निधाना।
तिहिं न लोक मत वहि जाना॥४॥

मारिग माहिं मँडि गया सूरा।
ता कूँ सतगुर मिलि गया पूरा॥
पाँच पकड़ि एक घरि स्याव।
चीतक चौहट न्याव चुकाव॥५॥

आतम माहिं जब भय अनंदा।
मिटि गये तिमिर प्रगटे रघुचंदा॥
बुधि का कोट सबल नहिं टूटै।
ताकौं मनसा डा[इ]णि कस विधि लूटै॥६॥

आसा नदी निकट नहिं जाई।
भरम सब दिये वहवाई॥
चेतन के गृह पहरा जागै।
ता कौं काल कहाँ कर लागै॥७॥
ऐसा है कोई अदली अदल चलावै।
नगरी चोर मूस नहिं पावै॥
कहँ कवीर सोई बड़ भागी।
जाकी सुरति निरंतर लागी॥८॥

आदि अंत अनहद बानी।
चौद ब्रह्मंड रह्या भर पानी॥९॥
ते पानी का अंड उपाया।
तीन लोक जन उपजाई माया॥
अंड सेवत भय जुग चारि।
तहाँ उपजे ब्रह्मा त्रिपुरारि॥१०॥
नाभ कमल छलि ब्रह्मा भये।
जुग छतीसों भरमत गये॥
आपै आप करत विचारा।
को हम को सरजनहारा॥११॥

जब ले अंता का अंत वहु।
विगहंत भई भारि ॥
जा दिन जीव जंत नहीं कोई।
ता दिन की दास कबीर! कहिं विचारि ॥१२॥
स्यो - सकती दोउ मुष जीवंत।

पछिम दिसा धुन अंनहद गरज अमिरस झरै उपजै ब्रह्मग्यांन ॥१॥*
आकासे उडध न अचवै आतम तत्त विचारी ॥२॥
नरसी जल मैं घर करै मनसा चढै पहाड़ं ॥३॥
गगन गरजै हीरा नीपजै घंटा पड़ै टकसालं ॥
(जो कोई) दास कबीर से पारषी कोई नर भये ऊतर पारं ॥४॥

अब की बेर मोहिं बकसल्यौ कदम दास कबीर।
गुर रामानँद के वदन पै सदक करूं सरीर ॥१॥
स्वामी जी तुम्ह-सतगुर हमदासा ··· ··· ··· ···।
पूछूं एक सबद का भेव। करो कृपा कहो गुर देव ॥२॥
(स्वामी जी) कौंन सी नगरी कौंन अस्थान। कौंन लोग बसैं परधान ॥
को है राजा को है महता। कहो पुरुष नगरी की बाता ॥३॥
ज्ञान कथ मन महंसं। केता ऊजड़ केता वंसं ॥
मोहि बतावो सबद का भेव। कहां बसै निरंजन देव ॥४॥

---

* कबीर की चार साखियां मिलाइए—

अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियांन ॥
अविगति अंतरि प्रगटै, लागै प्रेम धियांन ॥४४॥
आकासे मुषि औंधा कुवां पाताले पनिहारि ॥
ताका पांणीं को हंसा पीवै बिरला आदि विचारि ॥४५॥
सिव सकती दिसि कौंष जु जोवै पछिम दिसा उठै धूरि ॥
जल मैं स्यंघ जु घर करै मछली चढ़ै खजूरि ॥४६॥
अमृत बरसै हीरा नीपजै, घंटा पड़ै टकसाल ॥
कबीर जुलाहा भया पारषू अनभै उतर्या पार ॥४७॥

—कबीर ग्रंथावली

कहां ग्यांन कहां ग्यांन का म्यांन कहां म्यांन का मसकाला ॥
कहां धरती कहां धरती का पाट कहां पाट का कोंची ताला ॥५॥
कहां नीर कहां नीर का तीर कहां वासि का पीता ।
कहैं कबीर गुरु रामानँद जी यह दरियाव भरया कै रीता ॥६॥

सुनो सिधा काया नगरी हृदय अस्थान ।
पांच लोग बसैं (प्रधान) मन राजा पौन प्रधान ॥७॥
ग्यांन कथं मन महंसं । कुदया उजड दया घर वंसं ॥
कबीर सुनो सबद का भेव । हृदया वसं निरंजन देव ॥८॥
कबीर जी ये ल्यौ नगरी का भेव ।

निद्रा काल लह काल वासा
सील ग्यांन का म्यांन संतोष म्यांन का मसकाला ॥

सुरति निरति का तीर* छूछिम वासिका पीता ।
कहि रामानंद सबद सवाया और सबै घट रीता ॥९॥
सबद कुंची सबद ताला । सबदै सबद भया उजियाला ॥
जो [कोइ] जानै सबद का भेव । आपै करता आपै देव ॥१०॥
कांटा विना न कांटा निकसै । कूंची विना न ताला ॥
सिद्ध विना न साधिक निपजै ज्यौं घट होइ उज्याला ॥११॥
दर्पण मध्ये दर्पण दीसै, नीरंतर नीर कमाई ।
आपा मध्ये आपा दीसै, बिन देष्यां लष्या न जाई ॥१२॥
अंमर बरषै धरती निपजै, अंद्रि बरषंदाई ।
गुरू हमारा बानी बरषं चुनि चुनि मानक लेई ॥१३॥
स्वामी जी कौंन समांनि दुलीचा बोलिय कौंन समांनि भोगी ।
कौंन समांनि राजा बोलिय कौंन समांनि जोगी ॥१४॥
(स्वांमीं जी) काये देषि दो दल कंपं काये देषी कालं ।
काये देषि चेला कंपं किस बिधि बिष मिट जंजालं ॥१५॥
(सिधा) राजा देषि दो दल कंपं जोगी देषि कालं ।
सतगुर देषि चेला कंपं एस बिधि बिष मिट जंजालं ॥१६॥
जप तप सेती सब जुग लाग्या पाप पुंन की आसा ।

---

*मेरी समझ से इसका पाठ यह रहा होगा—सुरति नीर निरति तीर ।

तन मन सेती कोई साधु जन लाग्या जन किया निः केवल
(परम पद) वासा ॥१७॥
पवन घरि पानि पानि घरि मनसा बंक नालि सों आया ।
जटा मीन पानि में बैठे सुंन मींन घर पाया ॥१८॥
स्वामी जी बसत भवना जागन बैठे आसण मांडं षाली ।
कुवाँ है पण लेजू नाहीं किस बिधि सींचं माली ॥१९॥
(सिधा) जोग जुगति की लेज बनावो आसंण सेती ताली ।
मनसा फूल फुलंदर* लागी बाड़ी इस बिधि सींचो माली ॥२०॥
(स्वामी जी) बसत घणेरी बरतन ओछा कहो गुरू क्या कीजे ।
चांपि धरूं तो बरतन विणसै बाहर धरूं तो छीजे ॥२१॥
सिद्धा सहजें लीना सहजें दीना सहज सुरति ल्यौ लाई ॥
सहज सहज धरो कबीर जी बरतन, इस बिधि करै समाई ॥२२॥
(स्वामी जी) अड़ध चंदा उडध सूरा बिच गगन मध्य द्वारा ।
औघट घाट मलिद्रावं षोजो किस विधि पार उतरणा ॥२३॥
(सिधा) गुरू हमारे घरि वाणि जिन किया सकल पसारा ।
ले दिय कंद्रव बैठे कीया चौंदस उजियारा ॥२४॥
(स्वामीजी) सतगुर मिल तौ दरसन सांचा नाहिं त पछि मरणां ।
नाव है पण षेवट नाहीं किस विधि पार उतरणां ॥२५॥
सुंन के नेहर सुन सुनता रह। सबद सुं सबद मलि सबद बुझता रह॥
वाय सों वाय मलि मलि कर जानि । पानि म ब्रत कसं मथि आन ॥२६॥
गोब्यँद तबै पागिया एह अरथ विचारा
पढ़ गुण अरथ विचार नाहिं दिन दिन संष्या बाढ ॥२७॥
जप करं तप करं कोटि तिरथ भ्रम आवैं ।
(कहै कबीर सुनो गुर रामानँद जी) जुगति बिन जोगेस्वर
कस करि परम पद पावै ॥२८॥
सिधा काया नगरी अलेष राजा सील सँतोष उजीरं ।
सिधा धरती रूप सदा विलासं न विगसं आकासं ।
पांच पचीस मलि प्रगट षेलो सब जुग करो विलासं ॥२९॥
(स्वामी जी) अगम अगोचर दूरि पियाना मारग लषं न कोई ।
(कहिं कबीर सुनो) गुर सेती सतगुर चीना सरवण तत ग्यांन ।
मूरष सं [ग] विवर्जते प्रगट पसू समांन ॥३०॥

---

*फुलंदर = पुष्पेंद्र, कमल

पढ पढ राता गुण गुण माता हृदा सुद्ध न होई ॥
पढै गुणै औ घढ पड़ै जों गुर पंथ त्रविवेष पायक चेतन कोटवालं
नौ नौ घढिले समझावो जीतल्यौ जमकालं ॥३१॥
काया हमारा तषत बना है मन पवन दोउ घोड़ा।
गुर का सबद षडतल का खांडा कीया जमसे निवेड़ा ॥३२॥
अगिम हमारा वाजा वाजं झूल मस्त दर हाथी।
जीव का संसा सतगुर तोड्यां सु पुरुष मलि साथी ॥३३॥
जोग जुगति जहँ छत्र सिंहासन महा सकति रणवासं।
जहां विलँम पौन पुरूष वा घर रहनि हमारी ॥३४॥
काळ्या कढे न जाल्या सूक उतिपति परलै नाहिं।
सुंन मँडल म भौंर गुफा जहां पांचूं त [हां] झलाई ॥३५॥
इँगला पिँगला करल माता सुषमन के घरि मेला।
जहां विलंव मनवां कबीर जी सब जुग देखा भेला ॥३६॥
निश्चा विन मरणा निर अग्नि विन तरणा रंग राग विन अपारा ॥
सोव सदा जाग निसि वासर असा तत विचारा ॥३७॥
भूल्या सो भूल्या फेर बी चेतना। लोह कसंसा सों आपै कों रेतना ॥
भेषल्यो भेद तंत ल्यो सोई। नाभ कमल सों लहर उटतइ
झलमलि सोषैं वाई ॥३८॥
उलटि तील तेल चरंगे नीर चरंगे बाई।
नाद विंद गांठी पड़गा मनवा कही न जाई ॥३९॥
झाझं ले द्रावं सौंपो वांस मनोरथ पेलो।
धरती पैठि गगन थम रोपो इस विधि बन षँड पेलो ॥४०॥
(स्वामी जी) बन षँड जाउँ तो षुद्या व्यापै नगरी जाउँ तो माया ॥
कठण लहरि कंदरफ की पलटूं गुर जी।
किस विध सींचों जल व्यन्द की काया ॥४१॥
(कबीर जी) वजू कछोटी इंद्री बांधो, भला बुरा मति जोवो।
लोचत भोचत नागा मूनी हरि बिन जन्म विगोवो ॥४२॥
(स्वामी जी) आसा बांधों, वासा बांधों बांधो तत्त निवासा।
आपा परच्या दिढ करि वांधों सहजै चढौं अकासा ॥४३॥
द्वादस कमल तर अग्नि पहोपो जलसि समानि सिर जाग।
रनि पहर पडऊ लीट रनि काल सों लड़ें ॥४४॥

असि धारणि धारो कबीर जी सहजें पिंडले उधरो ।
सिधा समझे घट का येहि अँदेसा षे ॥४५॥
सतगुर वचन हृदय दृढ़ गहो लो सबद बिचारि ।
जा घट जैसी सामति देषो ता घट तैसा मेलो ॥४६॥
जंत्र मंत्र नाटक चेटक ये उरले व्यौहारा ।
सुंन मंडल म मोहा रा जागं वे वरले संसारा ॥४७॥
एकदसी द्वादसी धर्म का मेला चौंदस चंचल थीरं ।
पून्यो प्रगट नभ भा उज्यारा बुधि पिंड सरीरं ॥४८॥
एकदसी करि हिंदू भूल्या मुसलमान धरि रोजा ।
षट दरसन तीरथ करि भूल्या तन मन उनहु न षोज्या ॥४९॥
तन मन षोजतो काई का संसा लागि रह्या आचारं ।
एक न भूल्या दो [इ] न भूल्या भूल्या सब्र संसारं ॥
जानि बूझि करि जो नर भूल्या ता कउं वार न पारं ॥५०॥
तिरणि का ओट सिष्टका करता जुग देषि लुकाना ।
वेद कतेव पढि मुसलमान भूले पढि पढि मरम न जाना ॥५१॥
रूम रूम में ठाकुर रम रहये कोइ वरले जन चिना ।
उलटि वमै सर्प कौं षाय पूज देवा भोज आग ठाढ़े भये ॥५२॥
रहस के देहर नाद बाज्या
एहि कारण भेष जटा धारि निकस्या । जा उद्यान मान पकरि रह्या ॥५३॥
ऊरम धूरम जोति उज्याला । चंद बिन चाँदनी अग्नि बिन उज्यार
टुट न षड़की भाग न ताला । पाँच तत पुरुष ल्योष्ट धानवाला ॥५४॥
पिंड पड़ तो सतगुर लाजे ग्यांन की कोटड़ी पडत लहपूरा ।
पचि मुवा संसार निकस्या कोइ संत जन सूरा ॥५५॥
सूरा जूझंत पूरा बूझंत अगम पंथ कूं पग धरंत गढ वंका ।
(काहावत) काल कूं जीत कर जंजाल कूं मेटि करि निरभै
होइल्यौ मारिल्यौ मंन की संका ॥५६॥
अनहद की रूरी अगम का मेला तत तरवर की करल छाया ।
ग्यांन गुफा में बहुत सुष पाया ॥५७॥
अगम निगम है पंथ हमारा साषा आर (पत्र) अमी रस पीया ।
सुनो कबीर जी सो जोगेस्वर जुग जुग जीया ॥५८॥

परिशिष्ट १

स्व० डा० बड़थ्वाल ने गुरु रामानंद की रामरक्षा को बहुत महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक रचना माना था (दे० ऊपर भूमिका पृ० २)। खोज में इस स्तोत्र की अनेक प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं। इन उपलब्ध प्रतियों में पाठ-भेद भी है। डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने सन् १६०० की रिपोर्ट से एक पाठांतर संग्रह किया था। परंतु इधर के प्रकाशित खोज विवरणों में जिन प्रतियों का उल्लेख है उनमें ऐसे कई पाठ हैं जो १९०० की रिपोर्ट वाले पाठ से भी नहीं मिलते। प्रायः सभी प्रतियों में आरंभिक अंश कुछ-कुछ मिल जाता है किंतु अंतिम अंश प्रायः सब में भिन्न हैं। जिज्ञासु पाठकों के विचारार्थ नीचे उन पाठों का संग्रह कर दिया जाता है।

रामरक्षा स्तोत्र बहुत लोकप्रिय रहा होगा। कई संप्रदाय-प्रवर्तकों के नाम पर 'रामरक्षा'-नामधारी रचनाओं का पता चलता है। एक रामरक्षा रामानुजाचार्य लिखित कही गई है जिसमें रामानंदजी का नाम आता है। यह रामानंदजी की रामरक्षा से बहुत भिन्न नहीं है। गोरखनाथ और कबीर द्वारा रचित 'रामरक्षा' नामक पुस्तकें भी प्राप्त होती हैं। जान पड़ता है, परवर्ती काल में कई संप्रदायों में इस प्रकार के स्तोत्र-ग्रंथ की आवश्यकता अनुभूत हुई थी और तत्तत् संप्रदाय के संतों ने अपने अपने संप्रदाय-गुरुओं के नाम से रामरक्षा की रचना की थी। उन्हीं रामरक्षाओं में से कुछ रामानंद के नाम से भी चल पड़ीं। पाठ-भेद का यही कारण हो सकता है। तुलना के लिये रामानुजाचार्य, गोरखनाथ और कबीर की रचित बताई जानेवाली रामरक्षाओं को भी यहाँ संगृहीत कर दिया गया है।

—ह० द्वि०

(१) खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का त्रयोदश त्रैवार्षिक विवरण पृ० ५६१

संख्या ३८३, रामरक्षा, रचयिता—रामानंद, कागज—साधारण, पत्र–८, आकार ६ × ३ इंच, पंक्ति (प्रति पृष्ठ)–७, परिमाण (अनुष्टुप्)–२३, पूर्ण, रूप—प्राचीन गद्य, लिपि—नागरी और गुरुमुखी मिश्रित, लिपिकाल—सं० १८८४ = १८२७ ई०, प्राप्ति स्थान—श्री शालिग्राम दीक्षित, ग्राम—जामू, डाकघर—संडीला, जिला—हरदोई।

आदि—श्री क्रेस्नाय नमः ॐ संध्या तापनी सर्व दोष निवारणी संध्या करति धर्म न टरै पिंड प्राण की रक्षा निरंजन करे ज्ञान धुपमन पुरुष इन्द्री पंच हुतासन छमा जाय समाधि पूज नमो देव निरंजनः ॥१॥ ॐ अषंड मंडलं निराकार × × ×

तासील संतोष भई श्री रामरक्षा दीप ॐ कारा जाग्या पंच तत्व पचीच प्रकृति या भूत आत्मा पवाई स्याम द्रष्टि स्याम धरिति आई पान अपान समान उदान असमान मिलि अनहद त्रापद की षत्ररि पाई ७ उलटि या सरगृह डंक छेदन किया। पेषि या चंद्रचिहां कला सारी श्रीन प्रगट सै जारा, व्यधा जरि डंकनी संकरणी घेरि मारी ८ धरणि आकास त्रीच पंथ बहता किया भूत प्रेत दैत दानौं व संघारै ब्रज की कोठरी पज का दंडलै बज के षडगाह सुकाल मारा गरुड़ पंथी। उड़ा नागणी डस्या विपलित हरि मैं निद्रा न झपै ८ पिंड निरमल भया पिंड रे पेड़ सुवा रोग पिड़ा मधवा न व्यापै । रोम रोम रंकार उचरंत वाणी १०।

अंत—नाद नाद सुष मासा जाके साज साजं १७—खेचरी भूचरी चाचरी अगोचरी उनपटै बाढ़े—धड़ धाठ बाघ बाघिनी कामुका रोषे चरा भचरा अंश पाला अष किधौं आई फिरीतार है निराकार निरंजन के चक्र जो वाढ़ वाढ़ा द्रष्टि अरुमुष्ट छल छिद्रवीर वेतालाना ग्रह दुह यांपै उठालां पंथ मैं घोर मैं चोर मैं सोर मैं घर में बाहेर में देस परदेस राज के तेज मैं बैठ तौं उठलौं सौवतौं जागतौं पेलतौं मालतौं षावितौं पीवतौं नाह्यतौं धोवतौं सांकरै पैड़ पै उतौ श्रङ्गि काडाल मैं श्री राम रछा करै संत कै सीसपर हाथ दिया रहै चरण अरु सीस लौं आप रछा करैं गुप्त का जाप लै गुप्त सै वचं सूर्य दोऊ कधार रहिबो करै जीति या लक्ष्मण जी सुनते जानकी जी सुनते हनुमान जी सुनते पायन लिपंत तुन्यं तासु हरेते संध्याकाले प्रातकाले नरा पठंते सुनंते माछ मुक्ति परम पावते। इति श्री रामरछा गुरु रामानंद जी क्रति संपूर्णम् सं० १८८४ कार्तिक मासे क्रस्णे पछे दिने गुरुवारे।

(२) पंद्रहवा त्रैवार्षिक विवरण पृ० २९९

संख्या १८० ए०, रामरक्षा, रचयिता रामानंद, कागज—देशी, पत्र—४, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रति पृष्ठ)—९, परिमाण (अनुष्टुप्) ५४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—चौ० जोधासिंह जी, स्थान—सामपुर, डा०—जसराना, जि०—मैनपुरी।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ ओं संझा तारनी सर्व दुःष निवारनी ॥ संझा तरे सर्व दुष हरें । (३) अखंड मंडलं निराचरं व्यापिक एन चराचरां ॥ १ ॥ दर्सनं तत पदार तस्मै श्री गुरुभे नमः ॥ आदि गुरूदेव अंत गुरूदेव मध्य गुरूदेव सर्व गुरूदेव ॥ २ ॥ अलप गुरूदेव के चरनारवृंदं नमस्ते नमस्कारं । हरंत व्याधि सकल संताप कलह कल्पना दुष दालिद्रं ॥ ३ ॥ षंड षंड तस्मै श्री रामरक्षा निरंकार वाणी । अनुभय तंत लै निर्भय मुक्ति जांनी ॥ ४ ॥ वादिया मूल देषिया अस्थूल गर्जिया गगन जहाँ ध्यान धुनि लागी रहै । त्रिगुण रहै सील संतोष श्री रामरक्ष्या उचरंते आकार जाग्यो रहै ॥ ५ ॥

× अंत—वाघ वाघिनी को करै कारा षेचरी भूचरी छेत्रपाला धुआई फिरती रहै । अलष निराकार की जो ग्रह दूत पाषान टारया ॥ १८ ॥ हाथ चक्र ले वाढ़ वाढ़्या पंथ में पंथ में चोर में संचोर में । चोट में सोर में सोर में देश पर्देस में राजा के तेज में अग्नि की झर में । ॥ १९ ॥ पेलु को मास्ते सो उत्तमोल्ते सो उतों सोकड़े षाते पीते आपु रक्षा करे ॥ चरन औरु सीस लै अपु सेउता रहै गुप्त को जापु लै गुप्त पढ़ता रहै ॥ २० ॥ जीतिया संग्राम फिरि सूधा किया तजंति रूभनारी । गर्जिया गगन वाजिया वैन असंप सब्दलै तुचीसारं ॥ गुरु रामानन्द ब्रह्मज्ञानी रामरछया उच्चरै पानी ॥ २१ ॥ इति श्री गुरु रामानंद जी की रामरच्छया संपूर्ण समाप्त ॥

(३) वही, पृ० ३००

संख्या १८० बी० रामरक्षा, रचयिता—रामानन्द जी, कागज—देशी, पत्र—६, आकार—५½ × ३½ इंच, पंक्ति (प्रति पृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप)—६३, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—ला०—छैलविहारी लाल जी, स्थान—अँराव, डा०—मरौल, जि०—मैनपुरी ।

आदि—॥ अथ रामनंद जू की रामरक्षा लिष्यते ॥ ॐ संझा तारनी सर्व दुःष निवारनी ॥ संझातः सर्व दुःख हरः पिंड प्राण की रक्षा श्री निरंजनी करै ध्यान धूपं पुष्पकं पंचेन्द्री भूतासतां ॥ ॐकार विंदु संजुक्तं नित्यं ध्यायन्ति संयोगिनः ॥१॥ कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमे नमः । ओं अखंड मडलाकारं व्याप्तं येन चराचरं । तत्पदं दर्सितं येन तस्मैं श्री गुरवे नमः ॥ २ ॥ ओं आदि गुरू देवः अंत गुरूदेव मध्य गुरुदेव । मध्य गुरूदेव अखिल गुरूदेव

सरण गुरूदेव मध्य गुरु के चरनाविंदं ॥ नमस्ते नमस्कारं हरत सकल संताप दुष दारिद्र हरणं कल्पना रोग पीड़ा मघवान व्यापै सकल विस्व विष खंड षंडै ॥

अंत—श्री रामचंद्र नु चरंते लक्ष्मण जी सुनंते पुण्य बटंते पाप घटंते श्री रामरक्षा हनुमंत भाषते । दुष्ट दैत्यं आवत राम राषंते ॥ योगिनी करै भक्त बछल तापर कर डीनि नर करै ॥ उलटि द्रष्टि ताही कुंपाई ॥ इस पिंड प्रान की श्री रामरक्षा करै ॥ ॐ अज आसन वज्र किवार वार वारह वज्रले रुधु द्वार-प्राण जो कोई करै वज्रषहार ॥ उलट बीर बाई कूं षाय दे हमारें हरि बसै देषै वे अनंत श्री राम लछमन रक्षा करै चौकी हनुमंत बीर की ॥ वज्र का कोट लोह किवार चौकी राजा रामचन्द्र जीनकी लक्ष्मन जी हनुमंत जी सुनते पाप हरंते पुन्य लभन्ते सत की ले मध्यान काले संभूया काले स्मरंते नित्यं विष्णु लोकं सगछति ॥ इति श्री रामानंद जी की रामरक्षा संपूर्ण ॥

(४) वही पृष्ठ ३००

संख्या १८० सी, रामरक्षा, रचयिता—गुरु रामानंद, कागज—देशी, पत्र—४, पंक्ति (प्रति पृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—४०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८५४, प्राप्तिस्थान—श्री पं० राममूर्ति जी, स्थान—बाल्टीगढ़, डा०— शिकोहाबाद, जि०—मैनपुरी ।

आदि—श्री गणेशाय नमः । ॐ संज्ञा तारनी सर्ब दुख निवारनी संज्ञा तरें सब्र दुख हरें । अषंड मंडलं निराचरं व्यापक एन चराचरं ॥१॥ दर्सनं तत पादार तस्मै श्री गुरुभ्यो नमः आदि गुरुदेव अनन्त गुरुदेव मध्य गुरुदेव सर्न गुरुदेव ॥२॥ अलष गुरुदेव के चरनारवृंदं नमस्ते नमस्कारं । हरंत व्याधि सकल संताप कलह कल्पना दुष दालिद्रं ॥ ३ ॥ षंड षंड तस्मै श्री रामरक्षा निरंकार वाणी अनुभय तंत लैनोयि मुक्ति जानी ॥ ४ ॥

अंत—षेलते मालते सोउते साकड़े षाते पीउते आपु रक्षा करैं । चरन औरु सीस लै आपु सेउता रहै गुप्त को जापु लै गुप्त पढ़ता रहै ॥ २० ॥ जीति या संग्राम फिरि सूधा किया तजति रूम नारी । गजिया गगन बाजीया वैन असंष शब्द लै तुची सारं ॥ गुरु रामानंद ब्रह्मज्ञानी रामरक्षा उधरै प्रानी ॥ २१ ॥ इति गुरु रामानंद जी की रामरक्ष्या संपूर्ण ॥ समाप्तं स० १८५४ मिति पौष बदी ६ सनिवासरे ॥ श्री रामचंद्र सहाई ॥ श्री रामचंद्राई नमः ॥ श्री कृष्णाय नमः ॥ यद्याक्षरं परं भ्रष्टं, पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यदभवेत् तत्सर्वं छम्यतां देव, प्रसीद परमेश्वरं ॥ राचंद्रसहाई ॥ श्री राम ॥

(५) वही, पृष्ठ ३०१

संख्या १८० डी, रामरक्षा स्तोत्र, रचयिता—श्री गुसाईं रामानन्द, काग़ज—देशी, पत्र—१०, आकार—५ × ४ इंच, पंक्ति (प्रति पृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—७८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० राधेश्याम जी, स्थान—स्वामीघाट, मथुरा।

आदि—॥ श्री रामाय नमः × × श्लोक × × ॐ अस्य श्री राम रछ्या निराकार वांणी अनभैत तलै निरभै मुक्ति ज्ञानी ॥ बंधिया मूल देषिया अस्थूल प्रजिया गगनि धुनि ध्यान लागा ॥ त्रिगुण रहता रहै सील संतोष मांही ॥ श्री राम रछ्या दीयां आकार जाग्या पंचत तलै पचीस प्रकृति पांच बाय पंचभू आतमां समिं दिष्टि घेरि येक आनी पान अपान उदान व्यान समान मिलि अनहद सबद की पबरि जानी ॥ उलिटिया सूर ग्रह डंक छेदन कीया ॥ पेषिया चंद तहां कला सारी ॥ अग्नि प्रगट भई जरा वेदन जरी डंकिनी संकिनि घेरि मारी ॥

अंत— वेकुंठ निज धाम। जहाँ बसंत अच्युत घन स्याम सकत संत हरि सरुप। कवल नयन अनूर ॥ सभै मूर्ति आनंद। जन चकोर कृष्णचंद्र ॥ सइ मृत पीया। विषि का दरद सब दूरि भागा ॥ कँवल दल कँवल दल जोति ज्वाला जगी ॥ भँवर गुजार अकास लागा राम नाडी व्याधि तु चासोषंत बाजंत बैन उघरंत नैन तिति पोषत सबद त्रिकुटी सारंग ॥ स्वामी रामानंद जी ब्रह्मज्ञानी श्री राम रछ्या दीया थिर हो प्रानी पंथे घोरे संग्रामे सत्रु संकट वंचते ॥ इति श्री गुसांई जी रामानंद राम रक्षा संपूर्ण ॥

(६) वही, पृष्ठ ३०१

संख्या १८० ई० रामरक्षा, रचयिता—गुरु रामानद, कागज—देशी, पत्र—६, आकार—५ × ३ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—५, परिमाण (अनुष्टुप्)—३८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्ति स्थान—श्री पं० तोताराम जी, स्थान—आमरी, डा०—शिकोहाबाद, जिला—मैनपुरी।

आदि—"श्री भगवानुवाच ॥ ज्ञानं परम गुह्यं में, यद्विज्ञान समन्वितं, सरहस्यं तदंगं च गृहाण पिंड निर्मल भया ॥ पिंजरे पढैं सुवा रोग पीड़ा मघ बाज व्यापै रामे रोमररं द्वार उचरंत वाणी। श्रवण दे नाद सुनि दृष्टी अरु मुष्टि भया रंग मेला ॥ सुनिका देह ए सु न सुंन सुनाता रहै आपकी आपसौ जाधी लागा सरिरसौं सरीर मिलि सरीर निरषता रहै. जीव सूं जीव मिलि ब्रह्म जाग्या नयन सूं नयन मिलि बयन निरषता रहैं मुष सूं मुष मिलि बोल बोल्या श्रवण सूं

श्रवण मिलि नाद सुनता रहे सब्द सूं सब्द मिलि सब्द षेल्या निरत सूं विरता मिलि सुरत आवै ।। रंग सुरंग मिलि राग गावै ।।

अंत—राम जी पढ़ते लक्ष्मण जी सुनंते, हनुमान सुनंते । वीजी मंत्र त्रिकाल जपंते, सो प्राणि लागै रहे तैसो पारंगते ।। अजर आसन बजर किवाड़, बज्रटिया दसूं द्वार । जो करै पाप नरको द्योत, उलटि काल ताहि को पाय ।। जो मुषरा मुष राम निरंजन डरै, ताकी देव अनंत रक्षा करै ।। ६ ।। इति श्री गुरु रामानंद विरचितं श्री रांमरक्षा संपूर्ण ।।

७. गोरखनाथ जी की रामरक्षा, आर्यभाषा पुस्तकालय में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रंथ सं० ८७३ पत्र सं० ६३२ से गृहीत

अथ ग्रंथ रांम रछा श्री गोरष नाथ जी की

वोऊं सीस राषै सांईयां श्रवण सिरजनहार ।
नैनूं राषै निरहै री ।
नासा अपरंमपार ।। १ ।।

मुष रक्षा माधै वे ।
कंठ रक्षा करतार ।
ह्रदै हरि रक्षा करै ।
नाभी त्रिभवन सार ।। २ ।।

जांघ रक्षा जगदीसकी ।
पीडी प्रम सार ।
गिर रक्षा गोविंद की ।
पग तलि परम उदार ।। ३ ।।

आगैं राषै रांमजी ।
पीछै राषैणहार ।
बांव दांहिण राषिलै ।
कर गहि करतार ।। ४ ।।

जम डंक लागैं नही ।
विघन काल भै दूरि ।
रांम रक्षा जन की करैं ।
बाजै अनहद तूंर ।। ५ ।।

भेजी राषै बुध रौ ।
मन कूं मोह्न राइ ।
सुरति राषै सांईयां ।
कव्हूं दूरि न जाइ ॥ ६ ॥
कलेजो राषै केसवे ।
जीभ्या कूं जगदीस ।
आत्म कूं अलष रषै ।
जीव को जोति सरूप ॥ ७ ॥
राषि राषि सरना गता ।
जीव कूं अबकी बार ।
साधां की रक्षा करै ।
श्री गोरष सतगुर सिरजनहार ॥ ८ ॥

श्री रामानुजाचार्य रचित रामरक्षा,
(८) चौदहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, पृ० ५३७

संख्या २८६, रामरक्षा स्तोत्र, रचयिता—रामानुजाचार्य (वृन्दावन), पत्र—६, आकार—६ × ४३/४ इंच, पंक्ति (प्रति पृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—५४, रूप—प्राचीन, लिपि—नागरी, प्राप्ति स्थान—नेकराम शर्मा, कायस्थ, डाकघर—कोटला, जिला—आगरा।

आदि—श्री रामचन्द्राय नमः ॐ संध्या तरणि सर्व दुख निवारिनि। संध्या उचरे विघ्न टरे। पिंड प्राण की रक्षा श्री नाथ निरंजर करै। १। ज्ञान धूप मन पुहुप इंद्रिय पंच हुतासन। छिमा जाप समाधि पूजा नामदेव निरंजनं। २। ॐ अखंड मंडलकारं व्याप्तं जेन चराचरं। तत्पदं दर्शितं जेन तस्मै श्री गुरवे नमः। ॐ परम गुरुभ्यो नमः। प्रात्परे श्री गुरुभ्यो नमः। आत्मा गुरूभ्यो नमः। आदि गुरू देवी अनादि गुरूदेव अनन्त गुरूदेव। अलख गुरुदेव। सराय गुरूदेव। श्री गुरदेव के चरनारविंद नमस्कार। हरत सर्व व्याधि सोक संताप दुख दालिद्र कलह कलपना रोज पीड़ा। सकल व्रिघ्न खंखड तस्मै श्री रामरक्षा निराकार वाणि। अन ततले निर्भय मुक्ति जार भी ॥ ६ ॥ वांधपा मुल देखिया स्थूल गर्जिया गगन धुनि ध्यान लगा रहे। त्रिगुण रहित सील संतोष मांही श्री रामरक्षा लिये ॐकार जाज ॥ ७ ॥ पांच तत्व पंच भूत पचीस प्रकृति पंच वायु सम दृष्टि सांम धर

आई ॥ ८ ॥ उलटिया प्रान अपान उधान व्यान समान मिलि अनहद शब्द कि खवरि पाई ॥ ९ ॥

× अन्त—दोहाई फिरती रहे। अलख निरंजन का चक्र फिरता रहा। वहुवाट घाट में चोर में राज के तेज में सांकरे पैठता आनि विझाल में सोवते जागते खेलते मालते उठते बैठते संत के सीस पर हाथ धारे रहे। चरण अरू सीस सो रामरक्ष्या करे गुप्त का जानलै गुप्त साधैं। जीतिया संग्राम देवाधि देव चंड सूर्यंथ कथि रहै फेर सूधा किया, उलटि अमृत पिया। विष कि लहर सर्व भागी। कमल दल कमल जोति ज्वाला जतै। भमर गुंजार आकार जागा। रोम नाडि तुचा रक्त विंद सोषंत गाजत गगन बाजंतं वेनु धुनि सकत्रकुटि सारे गुरू रामनन्द ब्रह्म को चीन्हते सो ज्ञानि एते रामरक्षा वादेप उद्धरंत प्राणी। राजद्वारे पथे धारै संग्रामै शत्रु करै। श्री रामरक्ष्या स्त्रोत्र मंत्र राजा रामचन्द्र उचरंत लक्ष्मण कुमार सुनत धमैं निहारं ततयो पराय लभ्यते सीता सुमंत हनुमान सुनेते। बीज त्रिकाल जपते सो प्राणी परांगता। इति श्री रामानुजाचार्य कृत श्री रामरक्षा स्तोत्र सम्पूर्ण ॥

(९) कवीर जी की रामरक्षा, पंचदश त्रैवार्षिक विवरण पृ० १९२

संख्या—१०३ एस. रामरक्षा, रचयिता—कवीर, (स्थान—काशी), कागज—देशी, पत्र—२, आकार—५ × ३½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१८, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान पं० राममूर्ति शर्मा, स्थान—वाल्टीगढ़, डाकघर—शिकोहावाद, जि०—मैनपुरी।

आदि—ओं राम की रक्षा। ओं रोम की रक्षा रोम रिषि जी करैं। चाम की रक्षा राम जी करैं ॥ मास की रक्षा महादेव जी करैं। हाड़ की रक्षा राजा धू जी करैं ॥ कपाल की रक्षा कपिल मुनि जी करैं। करण की करण जी करैं। नेत्रों की रक्षा निरंजन जी करैं। नाक बाल की रक्षा लछिमन जी करैं। होठनि की रक्षा हनुमान जी करैं। दांतन की तेतीस कोटि देवता जी करैं ॥ जिह्वा की रक्षा माता सरस्वती जी करैं। गरे की रक्षा गोपाल जी करैं ॥ गुदी की रक्षा चतुरभुज जी करैं। बय की रक्षा बण देव जी करें ॥ बँह की रक्षा वाराह जी करै। हृदय की रक्षा हरि जी करैं ॥ छाती की रक्षा छप्पन कोटि देवता करैं ॥ नाभि की रक्षा ब्रह्मा जी करैं। एन्द्री की रक्षा इन्द्र देवता जी करैं ॥ कमरि की रक्षा

कमलापति जी करैं। मूल की रक्षा पृथिमी करैं॥ जाँघ की रक्षा जनारदन जी करै। घोंटू की रक्षा गोरखनाथ जी करैं॥ पीड़ी की रक्षा परसुराम जी करैं॥ एड़ी की रक्षा रघुवीर जी करैं। तरवा की रक्षा बलि बावनबीर जी करैं॥ नखों की रक्षा नरसिंह जी करैं॥

अंत—उछल करैं छल कौं मारौं। बल करै बल को मारौं॥ दिष्टि करै दिष्टि कौं मारौं॥ मुष्टि करै मुष्टि कौं मारौं॥ छल नहिं चलै बल नाहिं चलै। दिष्टि नहीं चले मुष्टि नहीं चलै॥ दीठि जरि राषि सरीर। ब्रंजि मांहि दै गए ब्रह्मा विष्णु महेस॥ ऊपर चढ़ै थल उतरै हनुमान हंकारै॥ टोढ हाथ कांपा तामें सब समाया॥ चौकी फिरती रहै बल बावन बीर की। सत्य राम रक्षा भनै दासं कबीर॥ १॥ समाप्त॥ राम राम॥

विषय--राम रक्षा मंत्र।

परिशिष्ट २

आर्य भाषा पुस्तकालय (काशी नागरी प्रचारिणी सभा) की २४२११४०९ से २४४४।१४०९ संख्यक हस्तलिखित ग्रंथ में रामानंद के दो पद इस प्रकार दिए हैं—

राग बसंत

कहां जइये घरिहीं लागौ रंग।
मेरौ चित न चलै मन भयौ अपंग ॥ टेक ॥
जहां जाऊं तहां जल पषान।
पूरि रहे हरि अब समान ॥
वेद सुमृत सब मेल्हे जोइ।
उहां जाइये जे हरि इहां न होइ ॥ १ ॥
एक बेर मनि भया उमंग।
चोवा चंदन चरचे अंग ॥
पूजन चाले ठांइ ठांइ।
गुरि ब्रह्म बतायौ आप मांहि ॥ २ ॥
सतगुर मैं बलिहारी तोर।
जिनि सकल विकल भ्रम जारे मोर ॥
रामनंद रमैं एक ब्रह्म।
गुर कै एक सबद काटै कोटि क्रम ॥ ३ ॥ १ ॥
सहज सुनि मैं नित बसंत।
अब हिअ सहजि जिनि जाइ अनंत ॥ टेक ॥
न तहां इंछया ऊंकार।
न तहां नाभि न नाली तार ॥ १ ॥
न तहां ब्रह्मां सिव बिश्न।
न तहां चौबीसौं वय बरन ॥ २ ॥
न तहां दीसै माया मंड।
रामानंद स्वामी रमैं अषंड ॥ ३ ॥ २ ।

राग सोरठि

ताथैं न कछु रे संसारा।
हमारै रामको नांऊ अधारा॥ टेक॥
गुड़ का चीटा गुड़ खाई।
गुड़ मांहि रह्यौ उरझाई॥
गुड़रती एक मीठा होई।
पीछैं दुख पावै सोई॥ १॥
सुपनंतर राजा होईये।
नांनां बिधि के सुष जोईये॥
अैसे सुष क्यूं सुष होई।
जागूं तौ झूठा सोई॥ २॥
मैं मेरी ग्यांन नसावै।
ताथैं आतमा समाधि न पावै॥
रामानंद गुरगंमि गावै।
ताथैं भिंनि भिंनि समझावै॥ ३॥ १॥

(श्रीउदयशंकर शास्त्री के संग्रह से)

अथ स्वामी श्री रामानंद जो कौ मानसी सेवा लिषते।

चरण सालगराम सबद कर सेऊँ तन तुलछी कर लीजै।
आतम चंदन घस घस चरचूं इस विध सेवा कीजै॥ १॥
ग्यान जनेऊ ध्यान धोवती सुच का अंचला कीजै।
काया कुंभ प्रेम का पानी हर दरीया भर लीजै॥ २॥
दया अचार बवेक सुचौका उर इस्नान करीजै।
इछ्या पोहोप चढ़ाऊँ पूजा मनसा सेवा कीजै॥ ३॥
त्रगुणी त्रगटी मनकर अरघा संपट ध्यान धरीजै।
पाँचू वाती जोय करे नै इंछ्या सेवा कीजै॥ ४॥
कलह कल्पना धूप अंगारी बह्म अगन कर षेऊं।
उलटीवास गिगन कूं लागी इस त्रिध सेवा सेऊं॥ ५॥
गुरगम मंत्र जाप करु अजपा ह्रदा पुस्तक कीजै।
अनभव कथा कहूं भाई साधो इस बिध पाठ पढ़ीजै॥ ६॥

अनहद घंटा झालर बाजे, अलष पुर्स की सेवा ।
पुरस निरंतर बैठा साधो रूम रूम मैं देवा ॥ ७ ॥
गंगा जमना बह सुरस्वती जहाँ जाय ध्यान धरीजै ।
त्रुगुटी मिंदर बैठा साधो वहाँ जाय दरसन कीजै ॥ ८ ॥
सहज सिंधासन निरभै सेऊँ चित की चंवरी कीजै ।
चसमा माँहि चंग ढलकाँऊ धीरज बैठा रीजै ॥ ९ ॥
कोई इक साधो मिलिया आई सब संतन का मेला ।
सतगुर मेरे सिर पर ठाढा मुदमा आगैं चेला ॥ १० ॥
या मेरी सेवा या मेरी पूजा इसी आरती कीजै ।
आतम तत विचारी लीजै ध्यांन निरंतर कीजै ॥ ११ ॥
जल पाषांण भरम की सेवा भूल भटक नहीं मरना ।
सतगुर मेरे जुगत बताई तब भव सागर तिरना ॥ १२ ॥
बाहर भरम कबू नहिं जाँऊ अंतर सेवा जागी ।
रामानंद गंगा निरभै आणी पारब्रह्म लिव लागी ॥ १३ ॥

॥ इति श्री मानस सेवा संपूर्ण ॥ १

अथ ग्रंथ ग्यान लीला लिषते ।

चौपई

मूरष तन धर कहा कमायो, राम भजन बिन जनम गमायौ ।
राम भक्ति गति जानी नाहीं, भूई भलौ धंधा माही ॥ १ ॥
मेरी मेरी करतौ फिरीयौ, हरि सिवरण तौ कबू न करीयौ ।
नारी सेती नेह लगायौ, कबहूं ह्रदै राम न आयौ ॥ २ ॥
सुष माया सुषरो पीयारौ, कबहूँ न सिवरौ सिरजन हारौ ।
जोबन मदमातौ अभिमानी, पर घर भटकत संक न आनी ॥ ३ ॥
स्वारथ माँहि चहूँ दिस ध्यायौ, गोविंद कौ गुण कबहुँ न गायौ ।
असैं असैं करत व्युहारा, आयौ साहब का हलकारा ॥ ४ ॥
बंध्यौ काल कीयो चौरंगा, सुत बेटी नार न कोई संगा ।
जेतैं कर्म कीया है भारी, सो अब संग सु चले तुमारी ॥ ५ ॥
जम आगैं ले ठाढ़ौ कीन्हौ, धर्मराय बूझन कूँ लीन्हौ ।
कीधा कौल कीया तुम कर्मा, [1]रिजनहार न भज्यौ निसरमा ॥ ६ ॥
जिण पानीं सु पैदा कीयौ, नर सो रूप तोहि कूँ दीयौ ।
जे तूँ बिसर्यौ मूरष अंधा, तौ तूँ आयौ जम कै बंधा ॥ ७ ॥

---

१ सिरजनहार

हरि की कथा सुणी नहीं काना, तौ तूँ नाँही जम सूँ थाना।
साध संगत कबहूँ नहीं रह्यौ, मुष सूं राम कबू नहीं कह्यौ ॥ ८ ॥
हरि की भगत करौ नर नारी, धरम राय यूँ कहै विचारी।
मोकु दोस न दीज्यौ कोई, जिसा करम भुगताऊँ सोई ॥ ९ ॥
पाप पुन कूं न्यारा ठाणु, जो तुम करम करो सो जाणुं।
तुमरा करम तुमै भुगताऊँ, आदि पुरस की आग्या पाँऊ ॥ १० ॥
साहिब की आग्या है मोऊं, माहा कसौटी देहूं तोकूँ।
घड़ी घड़ी का लेषा लेहू, कर्मादिक देरा भर देहूँ ॥ ११ ॥
है हरि बिना कूंन रुषवारौ, चित्त दे सिवरौ सिरजन हारौ।
संगट तै हरि लेह उबारी, निस दिन सिवरौ नाँव तुमारी ॥ १२ ॥
नाँव न केवल सब तैं न्यारा, रटत अघट होय उजारा।
रामानंद युं कहै समझाई, हरि सिवर्या जम लोक न जाई ॥ १३ ॥

इति ग्यान लीला संपूर्ण।

आत्मबोध

अविनासी रामानंद की गोष्ठी

रामानंद उवाच।

मन कवन, पवन कवन, सब्द कवन, प्रान कवन, ब्रह्म कवन, हंस कवन, काल कवन, सुंन कवन, जीव कवन, सीव कवन, निरंजन कवन।

अभीनासी उवाच।

पवन तो उसासु, सब्द तो सुंन, प्रान तो नी, ब्रह्म तो माया, हंस तो अभिनासी, काल तो हलाहल, सुन्य तो परम सुन्य, जीव तो करम वंधन, नीरंजन तो सब्द का रूप।

रामानंद उवाच।

मन कहाँ बसे, जीव कहाँ बसे, सीव कहां बसे, प्रान कहाँ बसे।

अभीनासी उवाच।

मन तो ह्रदया बसे, पवन तो नाभी बसे, सब्द तो सुन्य बसे, प्रान तो निरंजन में बसे, ब्रह्म तो ब्रह्मांड में बसे, हंस तो गगन में बसे, काल

तो सुन्य में बसे, सुन्य तो आपु में बसे, जीव तो काया में बसे, सीव तो चराचर में बसे, नीरंजन तो सुषमना में बसे।

रामानंद उवाच—

ह्रिदया नहीं था तो मन कहां बसे, नाभी नहीं था तो पवन कहाँ बसे, सुन्य नहीं था तो हंस कहां बसे, निरंजन नहीं था तो प्रान कहां बसे, ब्रह्मांड नहीं था तो ब्रह्म कहां बसे, गगन नहीं था तो हंस कहां बसे, चराचर नहीं था तो जीव कहां बसे, सुषमना नहीं था तो सीव कहां बसे।

अभिनासी उवाच—

ह्रिदया नहीं था तो मन अनूप में बसे, नाभी नहीं था तो पवन निरंकार में बसे, अनहद नहीं था तो सब्द ऊंकार में बसे, निरंजन नहीं था तो ऊँकार अभिगत में था, ब्रह्मांड नहीं था तो ब्रह्म जोत सरूप में था, गगन नहीं था तो हंस अभिनासी में बसे, कार्य नहीं था तो काल अनूप में था, काया नहीं था जो जीव सीव में था, चराचर नहीं था तो सीव सुषमना में था, सुषमना नहीं था तो निरंजन अलष पुर्ष में था।

रामानन्द उवाच--

सामी जी, मन का जीव कवन, पानी का जीव कवन, परान का जीव कवन, हंस का जीव कवन, काल का जीव कवन, सुन्य का जीव कवन, निरंजन का जीव कवन।

अभिनासी उवाच--

मन का जीव पवन, पवन का जीव सब्द, सब्द का जीव प्रान, प्रान का जीव ब्रह्म, ब्रह्म का जीव हंस, हंस का जीव काल, काल का जीव सुन्य, सुन्य का जीव जीव, जीव का जीव सीव, सीव का जीव निरंजन, निरंजन का जीव अलष पुर्ष।

रामानंद उवाच—

कहां से उतपत है मन, कहां से उतपत पवन, कहां से उतपत सब्द, कहां से उतपत सरूप।

अभिनासी उवाच—

अनुसार से उतपती नीरंजन, नीरंजन से उतपती जीव, जीव से उतपती सीव, सीव से उतपती काल, काल से उतपती मन, मन से उतपती पवन, पवन से उतपती सब्द, सब्द से उतपती सरूप।

रामानंद उवाच--

तन छूटे मन कहाँ समाए, पवन कहाँ समाए, सब्द कहाँ समाए, प्रान कहाँ समाए, हंस कहाँ समाए, सुन्य कहाँ समाए, जीव कहाँ समाए, सीव कहाँ समाए, निरंजन कहाँ समाए।

अभिनासी उवाच--

तन छूटे मन जोति सरुप में समाए, ब्रह्म तो हंस में समाए, हंस तो काल में समाए, काल तो सुन्य में समाए, सुन्य तो जीव में समाए, जीव तो निरंजन निराकार में समाए, अभीनासी व्यापक ब्रह्म, जन्म मरन से परे, ब्रह्मादिक से सुंदर, इन्द्रादिक से सुंदर, नारदादिक से सुन्दर, पार नहीं पावे, सरब में रहे सरब सुन्नाकार है।

इति श्री अभिनासी रामानंद जी की गुष्ठी।

ग्यान तिलक

ॐ स्वामी जी—

कवन सब्द ते मूल रे डाल, कवन सब्द ते फुल रे फूल।
कवन सब्द उतपत संसार, कवन सब्द ते पारमपार।।

कबीर उवाच—

अनहद सब्द ते मूलरे डाल, सार सब्द ते फूलरे फूल।
ग्यान सब्द ते पारम पार, मोह सब्द उतपत संसार।
ॐ आदी जो आदी अनहद बानी चौदह भुअन रहा भर पानी।
पानी में एक अंड उपाया, तीन लोक उपजावत माया।
जहां उपजे ब्रह्मात्रिपुरारी आप आप रे करे बिचारी।
नाभिकवल ते ब्रह्मा भए, जुग छतीस षोजत रहए।
काहु न पाया पार भए भरमभारी
उहां जब कोइ जीव न जंत आदी जुगादी पौन अरुपानी।
ब्रह्मा वीस्न महादेव जानी
तिनते उतपत सकल पसारा, उपजावत पालत करत संघारा।
धरती रूप सदा अभिनासी, ना विनसे अकासी।
पाँच पसारा परगट मिलकर, सब जुग करे बिलास।
इंद्र बरषे धरती नीपजे, इंद्र बरीसे देही।
सार सब्द गुरु-बानी बरसे, पुन पुन मानक लेही।
मारग में एक मठिया सूरा, जाके सतगुरु मिलिया पूरा।

पाँच पकर एक घर लावे, चीत के चौहट न्याव चुकावे।
आसा नदी निकट नहिं आवै, भै मरम सब दूर बहावे।
बुध का कोट सबल नाहां टूटे, ताते मनसा कीस बीध लूटे।
चेतन के घर पहरा जागे, ताको काल कहा होय लागे।
है कोइ अदली अदल चलावे, नगरी चोर मूसन नहिं जावे।
कहें कबीर सोई बड़ भागी, जाकी सुरति निरंतर लागी।
पक्छिम दिसा धुनि उपजै, सिव सक्ती अस्थाना।
अनहद गरजे अमी-रस झरै-उपजे ब्रह्म गेआना।
आकासे उर्ध मुख कुआ, पाताले पनिहारी।
जाके जल कोई साधू अचवै आदि तत्त्व विचारा।
पंछी जलमो घर करै, मनछा चढ़े अकास।
घन गरजे हीरा नीपजे, घटा बढ़त टकसाल।
कबीर जहाँ को पारखी, निरभय उतरो पार।
स्वामी जी जोति सरूपी, कीरपानिधान,
कौन अस नगरी, कवन असथान,
कौन नगरी का केता कथे, केता हंसे
केता उजड़े, केता बसे, सतगुरु कहो मोहि भेव,
कहाँ बसे निरंजन देव।

कबीर उवाच—

काया नगरी ह्रिदयाअसथाना, मन राजा, पौन प्रधाना।
ज्ञान कथे अरु मन में हंसे, निंदया घर उजड़े, दया घर बसे।
सतगुरु मिले तो पावे भेव, ह्रिदया बसे निरंजन देव।
स्वामीजी कहाँ काल कहाँ काल का बासा, कहाँ ग्यान
कहाँ ग्यान का पयान, कहां मेयान का मुसकला, कहाँ-
धरती, कहाँ धरती का कपाट, कहां कपाट का ताला कुंजी,
कहां नीर कहां नीर का तीर कहां बासीक का पीता,
कहे कबीर सुन गुरु रामानंदजी यह दरिया यमराय करीता।
कबीर निंद्राकाल, कलह काल कासा, सील ग्यान का मेयान
सन्तोष ग्यान का मुसकला, धीरज धरती का कपाट,
छेमा कपाट का ताला, कुंजी सुरत निरत का तोर।
सुछम वासीक का पीता कहे गुरु रामानन्द जी सुनो कबीर।

सव्द सो पाया और सभघट रीता।
सव्दे कुंजी सवदे ताला, सव्दे सब्द भया उजियाला।
जो जाने सव्द का भेव, आपही करता आपही देव।
सामी जी कौन समान दुलीचा बोलिये, कवन समान भोगी।
कवन समान राजा बोलिये, कवन समान जोगी।

कवीर उवाच

धरती समान दुलीचा बोलिये, पवन समान भोगी।
अउम समान राजा बोलिये, निरंजन समान जोगी।
सामी जी कवन सरवर पाल वीना, कौन कवल विना नाल।
कवन पुरुष जोनी विना कवन मौत विना काल।

कवीर उवाच

ह्रिदया सरवर पाल विना, नाम कवल बिना नाल।
अलषपुर्ष जोनी बिना, नींद मौत बिना काल॥
सामी जी कवन से देषे दो दल कांपे, कौन से देषे काल।
कवन से देषे चेला कापे, कैसे मेटै विषै जंजाल।

कवीर उवाच

राजा देषे दो दल कांपे, जोगी देषे काल।
सतगुर देषे चेला कापे, सहजे मेटे बिषै ज़ंजाल।
सामी जी जप तप सेंती लागा, पाप पुन्य के आसा।
तन मन सो कोउ साधू लागा, जिनका केवल पद में बासा।
बस्तु बिहूना जागन बैठे, आसन माड़े से आली।
कूआ है पै नीजु नाही, केहि विधि सीचे माली।

कवीर उवाच

जोग जुगती के लेजु बनावे, आसन सेती मनसा करे सहजे सीचे माली।
अरध चंदा उरध सूरा बीच गगन मठ दयारा।
अवघट घाट दरियाव भरा है, गुरू जी किस बिधि पार उतरना।

कवीर उवाच

सतगुर मिले तो दरसन सांचा, नहीं तो पच पच मरना।
नाव है पै केवट नाहीं, किस बिधि पार उतरना।

धरती बैठ गगन थंभ रोपो, इस बिधि बन षंड षेलो।
सामी जी बन षंड जाउ छुधा लागे, नगरी जाउ तो माया।
कठिन लहरि कन्द्रप की व्यापै सामी जी कीस बिध राषा जल बिच काया

कबीर उवाच

आसा बांधो मनसा बांधो, बांधो तत्व निरासा।
मन अरु पवन दोउ दिढ़ करि बांधो, सहजे चढ़ो अकासा।
हरता बांधो करता बांधो, बांधो बिषै बिकारा।
काया मध दिढ़ करि बांधो, भला बुरा मत बोलो।
बचन मोचन नागा मौनी, हरि बिनु मरम बिगोवो।
सामी जी वस्तु घनेरी बरतन छोटा, कहो गुरु क्या कीजै।
दाव धरों तो बरतन फूटे, बाहर धरो तो छीजै।
पाया सहजे लेना सहजे सहज सुरत लवलाइ।
सहजे सहजे धरे कबीरा, बरतन करे समाइ।
गुरु हमार गहरी बानी, परगट किया पसारा।
लै दीपक दरियाव मे पैठा, चहुँदिस भया उजियारा।
पवन दोआदस चले अगिनि, गगन हमारे बाजा बाजे।
पांच मस्त बड़ हाथी प्रजले, रबी ससी के घर जागत रहै।
रैन वहीरे वड़े उलट काल सो लड़े, पिंड छोड़ प्रान पुरुष अंत नही जाइ।
अैसी धरनी धरे तौ सहजे लव उघरे, बाद बीवादे काया छीजे।
सतगुर सब्दे कहे चेला, तत्व कर गहै सुन्य मै रहै।
म्रितक होय काल को डसे, उलट बांमी सर्प को षाइ।
भो जोगी आगे देव सेवा करे, रहित के टेरे नाद बाजे।
एकादसी दोआदसी धरम का मेला, चौदस पंचल थीर।
पुन्य प्रगट भया उजियारा, अवध पुंज सरीर।
पढ़ पढ़ माता गुन गुन राता, ह्रिदया सुध ना होइ।
पढ़ा गुना जो उमट चाले, गुर गम्य न देही।
आसन माड़े वन बन हारे, भाव भगत न होइ।
डटे सींच षीसे बींद, कांचा गुरु जे गम्य न देही।
नभ उषमन सो सतगुर चीन्हो, सरवन सो सत ग्यान।
मुरुष सो त्रिबरजित रहना, प्रगट पसू समान।

जंत्र मंत्र नाटक चेटक, ए उरले बेवहारा।
सुंन मंडल मे महरा जागे, ते भिरला संसार।
भूला जोगी औ सेष औलिया, मुनि जन कोटि अठासी।
अगम अगोचर अैसा, जहां अलष पुरुष अभिनासी।
एकादसी करहि दोउ भूला, तनमन किनहुन षोजा।
तन मन षोजे तो काहे संसा, लागी रहा अचारा।
एक न भूला दोए न भूला, भूला सकल सँवसारा।
जानि बूझि कर सो नर भूला, ताको वार न पारा।
तन कित्रो स्रिस्टी को करता, देषत जगत भुलाना।
बेद पुरान पढ़े अरु गावे, पढ़ पढ़ मरम न जाना।
सो सुन्य गहो रे प्रानी, भेष धरे तपस्या करे उद्यमं।
रोम रोम काया मे ठाकुर, कबीर बिरले चीन्हे ठाम।
बस्तु अलप है वहुत पसारा घामक धूमक भरि कोइ चले।
तीरथ के परचे कोइ मुन वारी,
जोगी जती तपी सन्यासी, तप कर आसा लागे।
कठिन लहरि कंद्रप के लागे, कोइ जूझा कोइ भाजा।
कांटा विना न कांटा निकसे, कुंजी बिना ना ताला।
सतगुरु विना न साधक उपजे, जे घट होय उजियाला।
सीखे सुने बिचारे नाहीं, दिन दिन संका वाढ़े।
कोट जप करे कोट तप करे, कोट तीरथ फिरि आवे।
विना विवेक विचार विन कहो, कबीर जीव पर्म तत्व कैसे कर पावे।

सुन्य मे सुन्य कैसे कर सूझे, सब्द में नीसब्द कैसे कर बूझै।
वायु मे तत्त्व कैसे कर जानिये, जल मे ध्रीत कैसे कर पानी
मथानिये।

कबीर गोबिंद तबही पाइये, या सब्द का करे बिचारा।
चकमक झाड़ अगिन परजाले, दधिमथि ध्रित कर लीन्हा।
आप मद्धे आपा चीन्हो, गुरु संदेस दीन्हा।

गुरु का सब्द अग्नी का टांका जब छोड़ा तब जागा।
सूरा होय सो सनमुख जूझे, कायर होय सो भागा।
जेता संत स्वामी कहावे, पांच चोर पटता संग।
नौ लाख घाटी म जम काल, कलह कलपना पग दे चांपी।

भोख दगा माया काया मे, एक तखत बना है ।
मन पवना दोऊ धारा, गुरु के सब्द अखंडीत खंडा
जम्ह सो किया निबेड़ा ।
गगन मंडल मे बाजा बाजे, मन मस्तक दोउ हाथी ।
सतगुरु के बल संसा तोड़ा, पांच पुर्ख मिल साथी ।
जोग जुगुति का छत्र सिंघासन, मस्तक तत्त्व निवासा ।
जहाँ कबीर मन भिलमिया, मंछी रहा अकासा ।
गुरु परताप कया गढ़ जीता, बिनु खरग हथियारा ।
जहाँ हमारी कूट कली, मूसिया सब संसारा ।
गन गंधरब मिलि सभ संहारे, दलबल के अधिकारा ।
ए दोऊ दल सहजे जीता, जीत लिया गढ़ भारी ।
नाम कवल ते सहर उठंगी भिलमिल सोखे बाइ ।
ता परचे मन तन मे बिलम्या धुन मे रहा समाइ ।
उलटी तीलीतेल परेगी, नीर परे बाइ ।
नाद बिंद गाढ़ परेगी, मनुआ अंत न जाइ ।
इंगला पिंगला नाता करले, सुषमन के घर मेला ।
जहाँ कबीर बिलम्या भूला, सनजुग देखा ।
भूला सो मूसा फिरभी चेत ना लोहा के संसै आपा नीरतता ।
भेष धर्म मर्म ते मिले गुसाईं ।
आपा मद्धे आपा चीन्हो, आप आप मै होई ।
आपा चीन्हो पौन अराधो, सहज पलटे जोती ।
काया मे मन मानिक नीपजै, झिलमिल बरषे मोती ।
उर मे खुर मे सहज उजियाला, नौ लख घाटी परा ताला ।
ताला न टूटे कुंजी न लागे, पिंड परे तौ सतगुरु लाजै ।
सार की कोठली बैठ तालिया पूरा, पचमुआ संसारा ।
निकसा कोउ संतजन सूरा, सूरा जूझत पूरा ।
पूछत धरंत ध्यान, गुरु ग्यान गढ़ बंका ।
काल की जीत जंजाल को मेट, मन की संक्या ।
जहां चांद बिन चांदना, अगिन बिना उजियार ।
परम तत्त्व जहां बिधान बासा, रह र . .

हंसा छोड़ सरोवर कहीं न जाय भगत सरीरी उपजी
पाया पद निरबान।
गुरु रामानंद के वचंन पर सब्द का करो परमान।
निरगुन गुरु सरगुन चेला गुरु रामानंद सों बाल हुआ मेला।

इति श्री गुरु रामानंद कबीर का
ज्ञान तिलक संपूरण

परिशिष्ट ३

स्वामी राघवानंद और सिद्धांत-पंचमात्रा

हिंदी साहित्य के तथा मध्यकालीन धार्मिक आंदोलन के इतिहास के विद्यार्थियों के लिये स्वामी राघवानंद का नाम सर्वथा अपरिचित नहीं। स्वामी रामानंद के गुरू होने के नाते उनका नाम बहुत लोग जानते हैं, किंतु इतना होने पर भी हमारे लिये अभी तक वे एक प्रकार से हैं नाम ही नाम। नाम के अतिरिक्त उनके विषय में हम जो कुछ जानते हैं वह बहुत थोड़ा है। परंपरागत जनश्रुति से इतना ज्ञात है कि वे रामानुजी संप्रदाय के महात्मा थे और योगविद्या में पारंगत थे[1]। नाभाजी ने भी उनका रामानुजी होना कहा है। नाभाजी के अनुसार राघवानंद भक्ति आंदोलन के बड़े भारी नेता हुये[2]। उन्होंने भक्तों को मान दिया, चारों वर्णों और आश्रमों को भक्ति में दृढ़ किया और सारी पृथ्वी को हिलाकर पत्रालंबित कर) वे स्थायी रूप से काशी में बस गये। हरिभक्ति सिंधु वेला ग्रंथ में, जिसके कर्ता अनंतस्वामी बताये जाते हैं,[3] उनका दक्षिण से आकर उत्तर में राममंत्र का प्रचार करना

---

१ किंवदंती है कि राघवानंद ने अपनी योग विद्या के बल से अपने अधिक प्रसिद्ध शिष्य रामानंद को मृत्युमुख से बचाया था। कहा जाता है कि स्वामी रामानंद पहले किसी अद्वैती गुरू के शिष्य थे जिसने अल्पायु योग को देख कर विशिष्टाद्वैती स्वामी राघवानंद की योगशक्ति के भरोसे उनकी शरण में रामानंद को छोड़ दिया। स्वामी राघवानंद ने रामानंद को भी पूर्ण योगी बना दिया और जिस समय उनका मारकयोग था उस समय उन्हें समाधिस्थ हो जाने की आज्ञा दी। इससे काल उन्हें छू नहीं पाया और मृत्युयोग टल गया।

२ भक्तमाल ३०।

३ संभवतः रामानंद के शिष्य अनंतानंद से अभिप्राय हो।

कहा गया है[१]। राघवानंद ही की शिष्य परंपरा में होनेवाले मिहीलाल ने (अनुमानतः सत्रहवीं शती में विद्यमान) उनको अवधूत वेशवाला कहा है[२]।

इस बात में तो सभी स्रोत सहमत हैं कि राघवानंद प्रसिद्ध स्वामी रामानंद के गुरु थे, नाभाजी का कथन है:—

रामानुज पद्धति प्रताप अवनी अमृत ह्वै अनुसरयो
देवाचारज दुतिय महामहिमा हरियानंद।
तस्य राघवानंद भये भक्तन को मानद॥
पत्रावलम्ब पृथिवी करि बस कासी स्थाई।
चार बरन आश्रम सबहीं को भक्ति दृढ़ाई॥
तिनके रामानंद प्रगट विश्व मंगल जिन वपु धर्‍यो।
रामानुज पद्धति प्रताप........३०

नाभाजी के समकालीन और सहतीर्थ जानकीदास के पोता चेले तथा वैष्णवदास के चेले मिहीलाल (अनुमानतः १७ वीं शती) ने भी अपने गुरु-प्रकारी नामक ग्रंथ में लिखा है:—

धनि धनि सो मेरे भाग श्रीगुरु आये हैं
श्री अवूधत वेष को धारे राघवानंद सोई
तिनके रामानंद जग जाने कलि कल्यानमई

तथा

श्री राघवानंद सरन गही जब निज जन लियो अपनाई।
श्री रामानंददास नाम कर भुज पसार लियो कंठ लगाई॥

---

१ वन्दे श्रीराघवाचार्यं रामानुजकुलोद्भवं।
याम्यादुत्तरमागत्य राममंत्रप्रचारकम्॥ २॥
ह० भ० सिं० वे०, मंत्र प्रकरण, चौथी तरंग

श्रीरामटहलदास का कहना है कि यह 'ग्रंथ रेवास स्थान में हस्तलिखित धरा है'। श्री रा० दा० संपादित वैष्णवमताब्जभास्कर......पृ० ५६

२ श्री अवधूतवेष को धारे राघवानंद सोइ।
रिसर्च रिपोर्ट ना० प्र० स० १९०० सं० ५८

सं० १८८० की लिखी कही जानेवाली श्री बालानंद जी के स्थान जैपुर की दोहाबद्ध परंपरा में राघवानंद रामानुजाचार्यजो की परंपरा में हर्याचार्य के शिष्य और रामानंद के गुरु माने गये हैं:—

हरियाचारज शिष्य भये तिनके सब जग जान।
भये राघवानंद पुनि तिनके भजन सुजान॥ १३॥
श्री रघुवर अवतार ले प्रगटे रामानंद।
कलि मँह जे मतिमंद अति मुक्त किये नरवृन्द॥ १४॥

राघवानंद के अपने विचार क्या थे, किन सिद्धान्तों का उन्होंने प्रचार किया इसका हमें विशेष ज्ञान नहीं है। इसका कोई साधन भी अब तक नहीं था, परन्तु अब एक छोटी सी पुस्तिका प्राप्त हुई है जो राघवानंद रचित कही जाती है। संभव है कि उससे इस संबंध में हमारा कुछ ज्ञान वर्द्धन हो सके। इस पुस्तिका का नाम है, सिद्धांत पंचमात्रा। यह दानघाटी, गोवर्द्धन, के हनुमान मंदिर के महन्त रामानुज संप्रदायके साधु श्री रामशरणदास जी से प्राप्त हुई है और नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में सुरक्षित है। पुस्तिका की पुष्पिका में लिखा है—"ई [ति] श्री राघवानंद स्वामी की सीद्धान्त पंचमात्रा संपूरणं।" पुस्तिका में छोटे छोटे बारह पृष्ठ थे जिनमें से चार लुप्त हो गये हैं, केवल आठ मिले हैं, प्रत्येक पृष्ठ में लगभग ३२ शब्द हैं। इस हस्तलिखित प्रति में न तो निर्माण काल दिया है और न लिपि काल।

अन्तःसाक्ष्य से पता चलता है कि पुस्तिका के रचयिता राघवानंद हों न हों, उसकी यह प्रति राघवानंदके समय को नहीं है क्योंकि उसमें कबीर और गोरख के शास्त्रार्थ का उल्लेख हैं और चतुःसंप्रदाय के अंतर्गत रामानंद संप्रदाय का उल्लेख है—

६ अ—१२ ज्ञान गोसटी की बात कबीर गोरष की बीती
१३ सींगीनाद कान की मुद्रा
७ अ—१ कबीरन गोरष कू जीत्यो
७ अ—७ श्री संप्रदाचारी
८ श्री गुरु रामानंद जी नीमानंद जी माधवाचारी विष्णुस्वामी

इससे यह अनुमान होता है कि यह प्रति कबीर के जीवन काल से भी कम से कम एक शताब्दी बाद की तो अवश्य है क्योंकि तब तक कबीर के संबंध में वे परंपरायें प्रसिद्ध हो गई थीं जो उनके जीवन काल में घटित नहीं हुई थी, क्योंकि कबीर और गोरख कदापि समकालीन नहीं थे।

इसी कारण इसके स्वामी राघवानंद की रचना होने में भी सन्देह हो जाता है। स्वयं पुस्तिका के अनुसार वह रामानंद को स्वामी राघवानंद का उपदेश है—

७ अ० १४ 'श्री राघवानंद स्वामी उचरन्ते श्री रामानंद स्वामी सुनन्ते' इससे यह भी स्पष्ट है कि राघवानंद से अभिप्राय रामानंद के गुरु ही से है किसी अन्य से नहीं। ऐसी रचनायें बहुधा गुरु की न होकर उनके शिष्य अथवा किसी प्रशिष्य की होती हैं। होने को तो केवल कबीर-गोरख गोष्ठी-वाला प्रसंग भी पीछे से जुड़ा हुआ हो सकता है किन्तु सावधानी यही चाहती है कि हम इसे उस समय से पहले की न मानें जिस समय उसमें कबीर-गोरख गोष्ठी का जुड़ना संभव हो सकता था। इससे अधिक से अधिक पहले ले जाने पर हम उसे सत्रहवीं शती की रचना मान सकते हैं। पुस्तिका की भाषा भी उसको सत्रहवीं शती का मानने में कोई बाधा प्रस्तुत नहीं करती। कभी कभी परंपरा से चली आती हुई रचनाओं में स्मृति दोष आदि कई कारणों से अपने आप अर्थात् किसी के सज्ञान प्रयत्न के बिना ही बहुत सी बातें पीछे से जुड़ जाती हैं। प्रस्तुत पुस्तिका में भी ऐसा ही हुआ जान पड़ता है, क्योंकि कबीर और गोरख के समय के विषय में चाहे कबीरपंथियों को भ्रम हो जाय परंतु कबीर और उनके दादा गुरू राघवानंद के समय के संबंध में भ्रम नहीं हो सकता। इस भ्रम में पड़कर कबीर का महत्त्व बढ़ाने के उद्देश्य से भी यदि किसी ने जाल किया हो तो अपनी उद्दिष्ट बातों को जाल रचनेवाले ने उन्हीं बातों के बीच रक्खा होगा जो उस समय सच्ची समझी जाती होंगी। इससे यह पुस्तिका चाहे अंशतः भी राघवानंद की रची न हो इतना जानने में तो अवश्य ही हमारी सहायता करती है कि उनकी एक शिष्य-प्रशाखा में चलती हुई परंपरानुसार उनकी विचारधारा क्या थी।

पुस्तिका बहुत छोटी है, इसलिये वह जितनी मिली है, सारी इस निबंध के अंत में दे दी गई है। वह गद्य में है या पद्य में यह कहना कठिन है। कहीं पर उसमें पद्य सा लगता है फिर वह गद्य सा जान पड़ने लगता है। सुभीते के लिये मैंने पुस्तिका को अलग अलग पंक्तियों में विभक्त कर दिया है। जहां तुक सा मिलता हुआ दिखाई दिया है वहाँ तुक पर और शेष स्थलों पर भाव आदि के अनुरूप, सुभीते के लिये मैंने प्रत्येक पंक्ति पर अलग अलग संख्या दे दी है। प्रति के पत्र तथा पृष्ठ संख्या का भी संकेत यथास्थान कर दिया गया है। जिस स्थल पर पुस्तिका का एक पृष्ठ समाप्त होकर दूसरा आरंभ होता है, वहाँ पंक्ति के ऊपर एक सीधी पाई दे दी गई है।

परंतु इस पुस्तिका में ठीक ठीक लिखा क्या है यह जानने में कई कठि-नाइयाँ हैं। एक तो इसके दो पन्ने अथवा चार पृष्ठ खो गये हैं जिससे उन स्थलों का पूर्व अथवा अपर प्रसंग न जानने के कारण अर्थ समझ में नहीं आता। दूसरे, इसकी बातों का परस्पर सम्बन्ध और क्रम समझना वैसे भी कठिन है और पढ़ते-पढ़ते यह भी संदेह होने लगता कि कहीं सुग्रथित ग्रंथ न होकर यह भी 'अनमिल आखर अरथ न जापू' वाले मंत्रों के ही समान तो नहीं है। फिर शब्द अलग-अलग न लिखे जाकर एक साथ सटा कर लिखे गये हैं। इससे यह आशंका रह जाती है कि हो सकता है कि मैंने तोड़ कर जो शब्द पढ़े हैं, वे बिलकुल ठीक वे ही न हों जो लेखक ने लिखे थे। कुछ न कुछ स्थलों पर तो अवश्य ही यह बात हुई होगी। कहीं पर भाषा का प्रयोग भी ऐसा है कि एक से अधिक अर्थ की सम्भावना हो जाती है। उदाहरणतः[1] इस पुस्तक में 'न' ने, नहीं और बहुवचन, तीनों का द्योतक हो सकता है—

'रोरी श्री आचारजन करी' (४ आ, ५)
'सूल धरण सीन्दूर की अवधून धरी' (४ आ, ६)
'कबीरन गोरख कू जीतो' (७ अ, १)

ऐसे स्थलों पर पूर्वा पर प्रसंग का ध्यान रखकर ही मैंने अर्थ समझने का प्रयत्न किया है। परन्तु यह निश्चयरूप से नहीं कहा जा सकता कि जो अर्थ मैंने लिया है, वह सर्वथा सही ही है।

इस पुस्तिका के अनुसार स्वामी राघवानंद का साधनामार्ग योग और प्रेम का समन्वित रूप है जो पुस्तिका ही के अनुसार सनत्कुमार आदि ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों के द्वारा चलाया गया था—

सनक सनन्दन सनतकुमार
जोग चलायो अपरमपार
प्रेम सुन सनकादिक चारु गुरु भाई
डंड कमंडल योग चलाई २ अ ४-७

और

पीता म राखे जोगेसुर मतवाला
उपजे ज्ञान-ध्यान प्रेमरस-प्याला ४ अ, १—२

१—इस संबंध में यह बताना उचित होगा कि गढ़वाली बोली में खड़ी बोली के कर्ता की 'ने' विभक्ति के स्थान पर 'न' का ही प्रयोग होता है।

यद्यपि स्पष्टरूप से उसमें षट्चक्र इडा, पिंगला, सुषुम्ना आदि का उल्लेख नहीं है, फिर भी सांकेतिक तथा प्रकट रूप से योग की बहुत सी बातें उसमें विद्यमान हैं। योग शब्दावली से वह भरी हुई है—सुन, गगन (२ अ २) शब्द (२ अ २; ६ आ ६) झनकार (झुनकार=अनाहतनाद) (२ अ १) आदि का उल्लेख स्थल-स्थल पर है। योगियों के मुहावरे भी कहीं कहीं पर प्रयुक्त हुये हैं, जैसे सेल—आन (६ आ ३) और 'रम गयो' (४ आ) पिण्ड पड़ना (६ आ १०) जटा रखना (२ आ १०) भभूत रमाना (२ आ ११–१२) दण्डकमण्डलु धारण करना (२ आ ७) कानों में मुद्रा पहरना (२ अ) आडबन्द और कोपीन धारण करना (२ आ १) मृगछाला रखना (४ आ १०) आदि आदि बातें उसमें उल्लिखित हैं, जिनका जोगियों के व्यवहार और वेश (भेष) से सम्बन्ध है, और जान पड़ता है कि उनका उल्लेख विरोध या निषेधमय नहीं वरन अनुरोध या विधिमय है। उसके साथ ही यन्द्रियनिग्रह की आवश्यकता पर जोर दिया गया है, योगी के मन में धैर्य और ब्रह्मचर्य-जीवन इसके लिये आवश्यक बताये गये हैं :—

योगेसुर मन में धारए धीर
मुज को आडबन्द वज् कोपीन
इस विध जोगी यंद्री जीत (२ अ १०–२ आ १)

सन्तोष योगी के जीवन की बड़ी आवश्यकता है, उसे धन-विभव से क्या करना है, अन्त में केवल पाँच हाथ भूमि समाधि के लिये बस होती है :—

तीन हाथ अनदेहा पाँच हाथ कर धरनी (४ अ ८)

जब तक शरीर का अस्तित्व है उसकी सामान्य आवश्यकतायें तो पूरी करनी ही होती हैं। इसके अनन्तर; उसे निश्चिन्त और निर्द्वन्द होकर योगमार्ग पर चलना चाहिये।

साढु चालुचाल चालो पन्था
राषां कन्था रहो निचन्ता (६ अ ९)

इंद्रियजितता के लिये नासिकाग्र दृष्टि का विधान है—

जीह मारी द्रोद्री (ही) कल जीतो जोगी राषो हाथ
नन (? नैन) नासका येक ही हाथ
देख्या चाह जग व्योहार (१ आ ७–९)

इस क्रिया से जगत का व्यवहार-रुप प्रत्यक्ष होता है, यह अनुभव होता

है कि परमार्थ रुप से जगत सत्य नहीं है। खेचरी मुद्रा का भी विधान है जिसमें योग ग्रंथों के अनुसार भ्रूमध्यादि साधनी पड़ती है—

खेचर कर तो गुर की आण (७ अ, १०)

प्राणायाम से (पवन) के द्वारा शुक्र (पानी) को स्थिर करके ऊर्ध्वरेता होकर योगी कालवंचणा करता है और अमर हो जाता है—

पवन पानी धरे सों जुग जुग जीव जोगी आस (९ आ ६)

सांकेतिक रूप से हठयोग का पूरा विधान पुस्तिका में है, हठयोग का चरमोद्देश्य सूर्यचन्द्र (प्राणापान; इडापिंगला) समागम है, जिससे समाधि अवस्था में पहुँच कर नाद, शब्द और ज्योति इस प्रकार त्रिधा योगानुभूति होती है—

चंद्र सुरज जमीं असमान तारा मंडल भये प्रकास (१ आ ५)
आवुन जोगी यह झनकार
सुन गगन म ध्वजा फराई पुछो सबद भयो प्रकासा
सुन लो सीधो सबद का बासा (२ अ-१—३)

वैष्णवधर्म सम्बन्धी बातों का भी इसमें काफी समावेश है। द्वादश[1] (द्वादशाक्षर मंत्र—ओं नमो भगवते वासुदेवाय) तिलक, तुलसी की माला और सुमरनी (२ आ-६) का आदर के साथ उल्लेख किया गया है, आरती, अर्घ्य और चरणामृत का भी उल्लेख है, और यह उल्लेख यदि उतना आदरपूर्ण नहीं है तो इसका कारण यह नहीं है कि उनका विरोध किया जा रहा है बल्कि इसलिये कि उनके केवल बहिर्मुखी प्रयोग की प्रवृत्ति रोकी जाय। नाम स्मरण का इतना महत्त्व माना गया है कि उसके बिना सब योग और वैराग्य-फीके समझे गए हैं, प्रेम की भावना भी (२ आ, ६; ४ आ २) जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, सम्भवतः योग के ऊपर वैष्णवतत्त्व ही की पुट है।

इस प्रकार दो मतों के एक में समन्वित होने से एक बहुत अच्छा परिणाम यह हुआ जान पड़ता है कि दोनों पर उसमें निष्पक्ष दृष्टि भी डाली जा सकती है और दोनोंकी बहिर्मुख-दृष्टि से मुक्ति प्राप्त करना संभव हुआ है। जैसे भीतरी-भाव के बिना आरती, अर्घ्य, चरणामृत आदि वैष्णवी पूजा

---

१ द्वादश 'तिलक' का विशेषण भी हो सकता है। उस दशा में उसका अर्थ होगा द्वादशाक्षर मंत्र का जाप करने वालों का तिलक।

विधान छूछे अर्थात रिक्त समझे गये हैं, वैसे ही योग की क्रियायें भी। जहां पुस्तिका में एक ओर लिखा है––

गंगा जमुना के असनान
राय चमेली पुसप विमान
तुलसी चन्दन सेज प्रमान
सजन आरती अरघ समान
चरणामृत ओर छूछी पूजा ओर भगवान
(४ अ २-६)

वही दूसरी ओर––

धरम कर आसण वादु (? अग) मन मृगछाला
ग्यान की से (ली) ध्यान कर टीका
योग वैराग नाम मंत्र फीका
(४ अ, १०, ४ अ ३४)

भीतरी भाव की महत्ता ने ही नाम मंत्र को योग वैराग्य का भी सार बना दिया है। इससे इस समन्वित नवीन मत में सत्य को अधिक महत्व मिला, अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान, सत्य को वास्तविक खोज करनेवाले ही को प्राप्त हो सकता है। प्राणों का मोह करनेवाले केवल बाहरी बातों में पड़े रहनेवाले अहंकारी लोग मृत्यु के मुख में चले जाते हैं, अनन्त नहीं हो सकते––

अनन्तषोजी जीववादी मरे
अहंकारी के पोंड पड़े (६ आ ६–१०)

गुरु का महत्व सब आध्यात्मिक पंथों में माना जाता है, योगमार्ग और वैष्णवमत में भी। इस पुस्तिका में भी यही बात है। जगत के आत्यन्तिक दुःख का दूर होना उसके अनुसार सद्गुरु के मिलने ही पर निर्भर है––

सतगुरु मीले तो दुष दालिद्र दूर करे

साधक का दुःख दारिद्रय शारीरिक कष्ट और पैसे का अभाव नहीं, जगत का बन्धन है। जिसने गुरु से दीक्षा पाई है वह साधना मार्ग में जैसी सफलता प्राप्त कर सकता है वैसी पोथी-पत्रों से ज्ञान प्राप्त करनेवाला नहीं। इसीलिये कहा है कि सौ दिन का पंडित एक दिन का मुंडित (दीक्षाप्राप्त) के बराबर है, उसे योगेश्वर की पहुँच का पता नहीं लग सकता :––

सो दोन पीडन्त एक दी का मुडत
पार न पाय योगेश्वर घर का (६ आ ७-८)

सगरा अर्थात सच्चे शिष्य का लक्षण यह है कि वह गुरु के शब्द का आदर करता है परन्तु जो गुरु के कहने के ऊपर अर्थात् उसे रौंद कर चलता है, उस पर विश्वास नहीं लाता है, वह निगुरा अर्थात् गुरुहीन ही कहलायेगा और वास्तविक अनुभव ज्ञान को न प्राप्त कर षड्दर्शन अर्थात् वाचनिक ज्ञान ही में पड़ा रह जायगा—

सुगुरा होय तो सबद कूमानै
नुगुरा होय तो ऊपर चाल
चलतो षटदरसन में मो काला (७ अ ११—१३)

मुसलमानी प्रभाव भी पुस्तिका में, थोड़ा बहुत दृष्टिगत होता है। टोपा लुगी और अलफी (बिना बाहों के लम्बे कुरते) का उसमें उल्लेख हुआ है[1]—

टोप की लुगी सेली राजे
गलविच अलफी साकड़ी लाफड़ी (६ अ ५—१०)

जान पड़ता है कि जोगियों ने बहुत कुछ सूफी फकीरों का पहनावा ग्रहण कर लिया था। विनियन के 'कोर्ट पेंटर्स आव दि ग्रेट मोगल्स' में संग्रहीत एक चित्र में (प्लेट अठारह और उन्नीस) गोरखनाथ और मछन्दरनाथ मुसलमानी फकीरों का सा पहनावा पहने दिखाए गए हैं।

सम्भवतः मुसलमानों के आघात से बचने के लिये योगियों ने ऐसा किया। टेस्सिटरी का कथन है कि मुसलमानी शासकों को प्रसन्न करने और राजनीतिक सुभीतों के लोभ से योगी बौद्धधर्म के क्षेत्र को छोड़कर ईश्वर शिवके उपासक हो गये[2]; तारानाथ भी कुछ ऐसा ही कहता है। इनसे भी ऊपर का अनुमान पुष्ट होता है।[3]

---

१ अलफी के व्युतपत्ति सम्मत अर्थ है, अलिफ वाला। उर्दूकोशों में इसके मानी दिये गये हैं जिस पर अलिफ का चिन्ह हो (कपड़ा इत्यादि) जैसे हिन्दुओं में रामनामी दुपट्टा होता है, वैसे ही मुसलमानों में अलफी होती होगी। हिन्दी शब्दसागर में अलफी के मानी बिना बाहों का लम्बा कुरता दिया है।

२ इन्साइक्लोपीडिया आव रिलिजन ऐंड एथिक्स में योगियों पर टेस्सिटरी का लेख।

३ शिफनरः, गिश डेस बुद्धिस्म इन इंडिया १८६९ ई० सेंट पीटर्सबर्ग ई० रि० ए० में गोरखनाथ पर डा० ग्रियर्सन के लेख में उल्लिखित।

ऐसा जान पड़ता है कि समय की आवश्यकताओं के अनुसार मुसलमानों की छुआछूत से बचने के लिए कुछ चतुराई भरे उपाय भी इस समय काम में लाये जाते रहे थे। मुसलमानों के देश में फैल जाने से सम्भवतः छुआछूत के नियमों का पालन पूर्णतः नहीं हो सकता था। इसी से सुअर के दाँतों का आसरा लिया गया—

दंत वराह का मुलक मुलक खेल आव (६ आ ३)

सम्भवतः मुसलमानों की छूत से अपवित्र हुई खाद्य सामग्री सुअर के दाँतों के स्पर्श से शुद्ध की जाती होगी, यह भी सम्भव है कि स्वामी राघवानंद की इसी प्रकार की शिक्षा को रामानंद ने आगे बढ़ाया होगा जिससे श्री रामानुजाचार्य के कट्टरतामय संप्रदाय से अलग उनका एक संप्रदाय बनना आवश्यक हो गया हो।

ऐसा जान पड़ता है कि मध्यकाल की अस्थिर और अशान्त परिस्थितियों में साधुओं को अपना सैनिक संगठन भी करना पड़ा होगा। सिक्ख गुरुओं का सैनिक संगठन प्रसिद्ध ही है। अब भी कुम्भ आदि अवसरों पर बड़े-बड़े अखाड़ों के साथ शस्त्रों के कुछ कलाबाज भी दिखाई देते हैं। सम्भवतः इनके मूल पुराने सैनिक संगठन ही हों। सिद्धांतपंचमात्रा में भी कटार और तमंचे का उल्लेख है, परन्तु असली का नहीं, नकली कटार और तमंचे का:—

काठ की कटारी बेल की तुमाची

नहीं कह सकते कि इसका ठीक ठीक कारण क्या है। संभवतः पुराने साधु संगठनों की सैनिक प्रवृत्ति के विरोध में अहिंसा को महत्त्व देने के लिये ऐसा किया गया हो।

ऊपर की सब बातों का तारतम्य स्थापित करने से यह अनुमान होता है कि जिस समय दक्षिण से आकर श्री यामुनाचार्य और रामानुजाचार्य की वैष्णव भक्ति का उत्तर में प्रचार हुआ उस समय वहां योग संप्रदाय का बहुत प्रसार था। इस नवीन भक्ति के प्रभाव में योग संप्रदाय के बहुत से लोग आ गये। परन्तु साथ ही इन लोगों ने पुराने मार्ग की बातों को जो उनके अस्तित्व के अभिन्नांश हो गये थे, त्यागा नहीं। उन्हें नई परिस्थितियों के साथ समन्वित कर लिया। इसीलिये हमें रामानद, कबीर, रैदास आदि उनके उत्तराधिकारियों में योग और भक्ति का पूर्ण समन्वय मिलता है और यही बात इस पुस्तिका में भी पाई जाती है। 'गुरुप्रकारी' में मिहीलाल ने राघवानंद को अवधूतवेश वाला कहा है। अवधूत दत्तात्रेय के अनुयायी थे जो पीछे गोर-

क्षादि के प्रभावक्षेत्र के अन्तर्गत आ गये। गोरखनाथी आदि में भी दत्ता-त्रेय को मानते हैं। योगियों के ही समान रामानंद के वैरागी भी अपने को अवधूत कहा करते थे।

यह भी एक अर्थगर्भित तथ्य है कि इस पुस्तिका की प्रस्तुत प्रति एक रामानुजी हनुमानमंदिर में पाई गई है, जो योग संप्रदाय और श्री वैष्णव संप्रदाय के समन्वय का प्रत्यक्ष उदाहरण है। लक्ष्मण के समान हनुमान भी योगमार्ग में आदर्श यती और योगी समझे जाते हैं। इस पुस्तिका में भी (ग) रूड़ हनुमान (४ अ १) का उल्लेख हुआ है परन्तु किस अभिप्राय से यह उसके ठीक पहले के पत्रे के खो जाने से पता नहीं चलता। हणमन्त के नाम से कुछ कविता भी बन गई है, जो योगियों के साहित्य में प्रचलित है। डा० ग्रियर्सन को रामानंद का एक पद मिला था, जिसमें हनुमान की प्रार्थना[1] है। ये बातें भी योग वैष्णवमत समन्वय के हनुमान को पुष्ट करती हैं।

———

[1] ना० प्र० प० नवीन सं० भाग ४ पृ० ३४१

सिद्धान्त पंचमात्रा

श्रीमते रामानुजाय नमः

पत्र १ आ……१ ॐ सतसव्दकरी सतयुग व्रता

२ हसता वीणा सतगुरु करता

३ सतगुरु करते वुध अपार

४ कंठ सरस्वती धरो समार

५ चंद्र सुरज जमी असमान तारामंडल भए प्रकास

६ पवन पानी धरे सो जुग जुग जीव जोगी आस

७ जीह भारी द्रोदी (? ही) कल (? काल) जीतो जोगी राषो हाथ

८ नन (? नैन) नासका येक हो हाथ.

२ अ…… ९ देष्या चाह जग व्योहारः

१ आवु न जोगी यह झनकारः

२ सुन गगन म धजा फराई पुछो सवद भयो प्रकासाः

३ सुन लो सीधो सवव्द (? शव्द) को वासाः

४ सनक सनन्दन सनत कुमारः

५ जोग चलायो अपरमपार

६ प्रेम सुन सनकादीक चारू गुरूभाई

७ डंड कमंडल योग चलायो

८ योग चलायो लोकापार

९ सतगुरु सादिक रमता सादु

१० योगेसुर मन म धारल धीर

२ आ…… ११ मुज को आडवं द बजर कोपीन

१ ईस-विध जोगी ईंद्री जीत

२ मुज को जनेऊ बनो लर तीन

३ काया प्रवीन वीसवा राषा तीन

४ दुवादस तीलक छापा राज (जै)

५ देषत रूप सकल भय भाजै
६ तुलसी की माला हाथ सुमरणी
७ रोम रोम योगेसुर बरणी
८ कान श्रवणी जंतु ढेढी मुद्रा
६ योगेसुर कुं काल न झंपे नीद्रा
१० सीर पर चोटी जटा वधाये
११ ये वीध योगी भभुत चढ़ायें
१२ भभुत रमय अंग अपार
१३ कटन यी···य···

पत्र ३······नहीं है

पत्र ४ अ··· १ (ग) रुड़ हनुमान
२ गंगा जमुना के असनान
३ राय चमेली पुसप बीमान
४ तुलसी चंदन सेज प्रमान
५ सजत आरती अरघ समान
६ चरणामृत ओर छुछी पुजा ओर भगवान
७ झाझ षंजरी ओर म्रीदंग बाजा वाज संष ओर धुन
८ तीन हाथ अन देहीं पाँच हाथ कर धरनी
९ गुरु आस धुनी वीचरंत धरण कर धरणी

४ आ—१० धरम कर आसण बहु म्रगछाला
१ पीता म राषे जोगेसुर मतवाला
२ उपजो ग्यान ध्यान प्रेम रस धाला
३ ग्यान कीसे ध्यान कर टीका
४ योग वैराग नाम मंत्र वीन फीका
५ रोरी श्री आचारज न करी
६ सुल धरण सींदूर की श्री अवधुत न धरी
७ दील कर झोली मन कर तुमा
८ दील दरियाव कुवा भरि पीवो सीधाओ रसुवा कुंडी
९ कुतका मार बगल मा सादु रम गयो
१० सुन महल म मची पाच कमक···

पत्र ५ — नहीं है

पत्र ६ अ—१…सक कर सींगार
२ जब योगेसुर रूप नीहार
३ केते मन की गोदड़ी केते मन का टोप
४ नो मन की गुदड़ी सवा मन का टोप
५ टोप की लगी सेली राजे
६ कान ठेचरी अद्भुत वीराजे
७ चोला षलका पहरी काया री
८ सादु चालु चाल चालो पंथा
९ राषो कंथा रहो नीचंता
१० गल वीच अलफी साकड़ी लाकड़ी
११ सादीक कह सीध के तन मन की
६ आ—१२ उन मतंगा हाथे गंगा बगल बीच झोली
१ हथ म सीसा टीकी थली (?)
२ द्वादस तीलक संत जन करते
३ दंत वराह का मुलक मुलक षेल आव
४ काठ की कटारी वेल का तुमाची

डा० बड़थ्वालजी के संग्रह में ६ आ की ४ संख्या की पंक्ति के बाद का नीचे लिखा अंश छूटा हुआ था जो आर्य-भाषा पुस्तकालय ना० प्र० स० के संग्रहालय के हस्तलेख सं० ७०३ से लिया गया और जो इस प्रकार है:—

ज्ञान गो सटीकी बातक
बीर गोरष की बीती सेली सींगी नाद कान को मुद्रा
कबीर गोरष की बीती
सेली सींगीनाद कान की मुद्रा कर
वीर न गोरष कु जीतो योगी
जंगम से वडा संन्यासी
दुखे सई न वैराग सरस है
जो न जान सेव संत जन असथानी मैदानी मंकानी है
सलानी गाछा वाछा नदी निवासा ताल वावडी कुवा वाछा
आसन कर श्रीसंप्रदाचारी
श्री गुरु रामानंदजी नीमानंदजी माधवाचारी
वीहमुस्यामी चार संप्रदा

५ पी प्याला ओर अमता
६ सवद सवद ले साढु रमता
७ सो दीन का पीड़ित येक दीन का मुडत
८ पार न पाव योगेस्वर घर का
९ अनन्त षोजी जीव वादी मरे
१० अहंकारी के पीड पड़ (? पिंड पड़े)
११ सतगुरु मीले तो दुष दालींद्र दुर करे
९ बावन दुवारा भेष के ऊपर भेष
१० पेचरी कर तो गुर की आए
११ सुगरा होय तो सबद कु माने
१२ नुगरा होय तो उपर चाल
१३ चाल तो पटदरसन में मो काला
१४ श्री राघवानन्द स्वामी उचरंते
श्री रामानन्द स्वामी सुनन्ते

इति श्री राघवानन्द स्वामी की .सिधांत पाचमात्रा संपुरणं ।

परिशिष्ट ४

—श्री उदयशंकर शास्त्री के संग्रह और उनके सौजन्य से प्राप्त

अथ रामानंद जी कौ भगति जौग ग्रंथ लिष्यते ।

चोपई

भगति जोग एक सुणों सीयाणां, बुधि प्रमांण कछू करूं वषांणां ।
भगति करण करो आरंभ, मैंहल उठै जब थरि होइ थंभा ॥१॥

प्रथम पकड़ै दिढ वैराग, गहै विसवास करै सब त्याग ।
इंद्री जीति रहै उदासा, अथवा ग्रह अथवा वनवासा ॥२॥

माया मोह करै नहीं काहू, रहै सबन सूं वेपरवाहू ।
कनक कामणि का करै न संगा, आसा तिसना धरै न अंगा ॥३॥

सील भाव छम्या उर धारै, धीरज सैहत दया व्रत पारै ।
दीन गरीवी राषै पासा, देषै निरपष होइ तमासा ॥४॥

मानि महातम कछू न चाहै, ऐक दसा सदा निरवाहै ।
रावरंक की संक न आंणैं, कीडी कुंजर एक करि जाणैं ॥५॥

वैर भाव कासूं नहीं करि है, गुर कौ सवद ले हिरदै धरि है ।
सार गहै कूकस सब नाषै, रमता राम इष्ट करि राषै ॥६॥

आनदेव की करै न सेवा. पूजै एक निरंजन देवा ।
मन मांहीं सब सूज ज राषै, वाहरि के वंधन सब नाषै ॥७॥

सुनि से मंदिर अधिकै अनूपा, ज्यामैं मूरति जोति सरूपा ।
सैहज सिंघासन बैठे स्वामी, आगैं सेव करै गुलामी ॥८॥

उदक सील सनान करावै, प्रेम प्रीति का पोहोप चढ़ावै ।
भोजन भाव धरै ले आगैं, मनसा वाचा कछू न मांगै ॥९॥

ग्यांन दीप ले आरती उतारै, घंटा अनहद सवद उचारै ।
तन मन सकल अरपन करही, दीन होइ फुंनि पावन परही ॥१०॥

मगन होइ नांचै अरगावै, गद गद रोम अचल होइ आवै ।
सेवा भाव कभू नहीं चोरै, दिन दिन प्रीति अधिकी जोरै ॥११॥

ज्यूं पतिव्रता रहै पीवपासा, यूं साहिब कैं ढिग रहै दासा ।
कोउ दैस भूलि मति जावो, पतिव्ररता पति ले निरवावौ ॥१२॥

आन दसा पाँव मति धारो, गुर कौ सब्रद ले हिरदै धारो ।
सदा अषंडत ताली लावौ, पूरण ब्रह्म मैं जाइ मिलावौ ॥१३॥

दूहा

राह भगति अननि है बिरला पावै भेव ।
भाग हुवो ते पाइयें, कहै रामानंद गुरुदेव ॥१४॥

इति भगति जोग ग्रंथ संपूरण

———

परिशिष्ट ५

(काशी नागरीप्रचारिणी सभा के आर्यभाषा पुस्तकालय में सुरक्षित हस्त-लेख संख्या ६५१ से उद्धृत—)

।। राम अस्टक ।।

अवधपुरी निज धाम कही नीकट सरजू गंग है ।
दसरथ नंदन असुर गंजन श्री राम जीव पुरन ब्रंह्म है ।।१।।
सत्य सीता भ्रात लछमन धनुष धारी श्रीराम है
चीत्रकुट तप लोक कहीये श्रीराम जीव पुरन ब्रंह्म है ।।२।।
लंकपुर छन माह जारो ऐग्याकारी हनुमान है
रावन मारीची भीषन थापो श्रीराम जी पुरन ब्रह्म है ।।३।।
सोरह कला जुग चारी प्रगटो सात दीप नव खंड है
आदी अंत मध्य खोजी देखो श्रीराम जी पुरन ब्रंह्म है ।।४।।
भाल तीलक वीसाल लोचन आनंद कंद श्रीराम है
स्यामली सूरति मधुर मुरति श्रीराम पुरन ब्रंह्म है ।।५।।
अस्ट सीधी नव नीधी दाता भक्ति मुक्ती वर दायकं
ज्ञान जोग सरुप सुंदर श्रीरामजी पुरन ब्रह्म है ।।६।।
चेतनी होइ चेत माह चेत जोग जुगती लीला रची
करही करतार भही भुक्ता श्रीराम जी पुरन ब्रंह्म है ।।७।।
ब्रह्म बिस्तु महेस नारद कोटि अठासी देवता
इंद्रादीक सनकादि गावही श्रीराम जी पुरन ब्रंह्म है ।।८।।
राम अस्टक पढ़त नीसु दिन सत्य लोक सोग छीतं
रामानंद अवतार अवधु श्रीराम जी पुरन ब्रंह्म है ।।९।।

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	१६	इला	इड़ा
६	८	यही	यती
६	६	अनुभूति	अनुभव
१०	२	पथ प्रदर्शक	पथ प्रदर्शक की
१०	१८	बहुत	बहुत बड़ा
११	८	लक्ष्य	लक्षण
१२	१४	मुक्त	नित्यमुक्त
१४	१०	स्वामिभाव	स्व स्वामिभाव
१८	२५-२६	श्री	श्रीं
२०	२७	राक्षसह्न	राक्षसघ्न
२१	११	तिलंगों	तिंगलों
२२	२३	वैशिवादी	वेशिवादी
२५	३	उद्वैत	अद्वैत
२५	५	आत्मवाती	आत्मवादी
२७	४	किया	किया गया है
४८ (परिशिष्ट ३)	१३	हनुमान	अनुमान
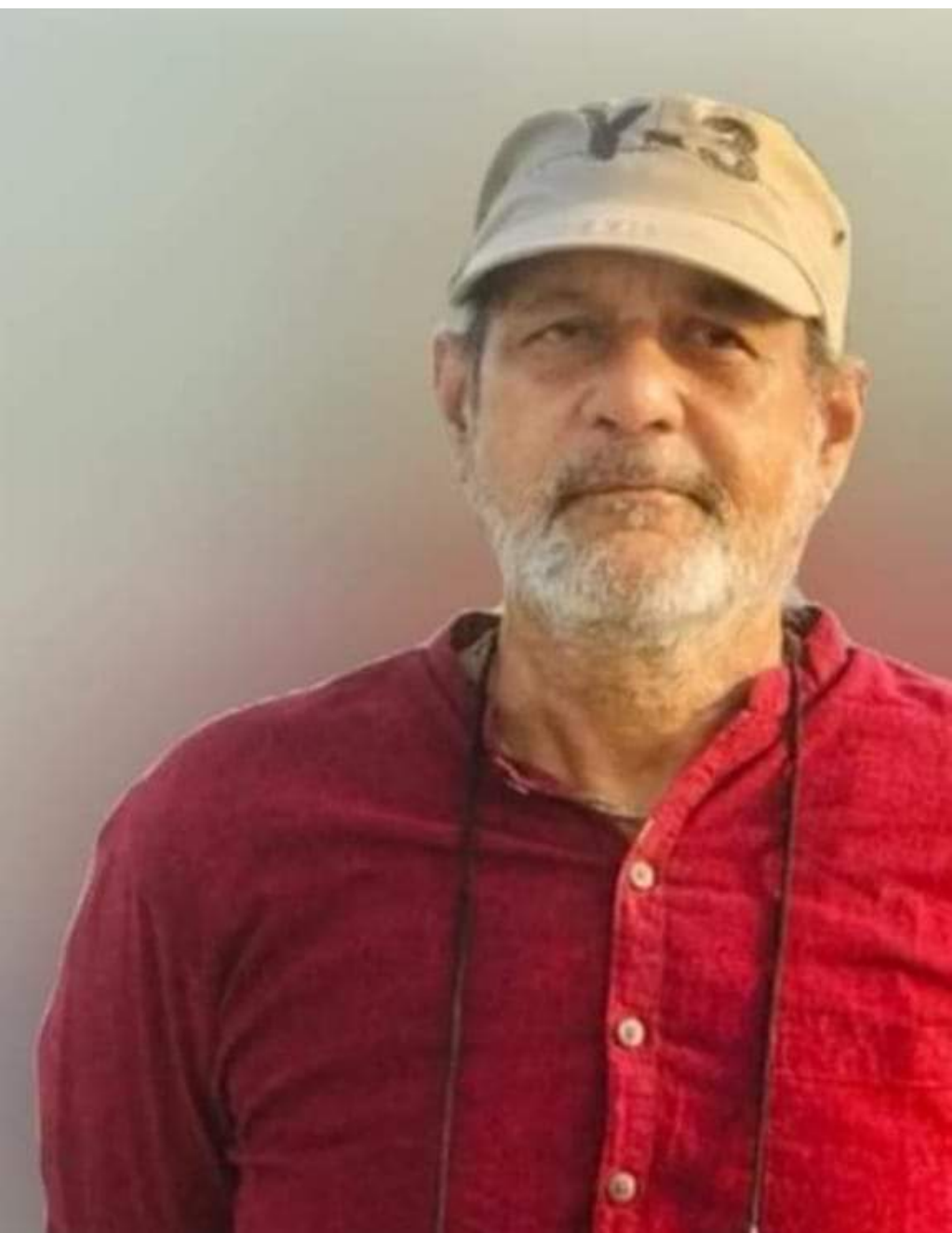
This PDF you are browsing is in a series of several scanned documents from the Chambal Archives Collection in Etawah, UP

The Archive was collected over a lifetime through the efforts of Shri Krishna Porwal ji (b. 27 July 1951) s/o Shri Jamuna Prasad, Hindi Poet. Archivist and Knowledge Aficianado

The Archives contains around 80,000 books including old newspapers and pre-Independence Journals predominantly in Hindi and Urdu.

Several Books are from the 17th Century. Atleast two manuscripts are also in the Archives - 1786 Copy of Rama Charit Manas and another Bengali Manuscript.Also included are antique painitings, antique maps, coins, and stamps from all over the World.

Chambal Archives also has old cameras, typewriters, TVs, VCR/VCPs, Video Cassettes, Lanterns and several other Cultural and Technological Paraphernelia

Collectors and Art/Literature Lovers can contact him if they wish through his facebook page